भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन विचार मंच का मुखपत्र

वर्ष- 2, अंक- 5-6, अप्रैल, 2015

राष्ट्रीय कायाकल्प

(हिन्दी-त्रैमासिक)

भारत की गरीबी

शासन व्यवस्था की देन

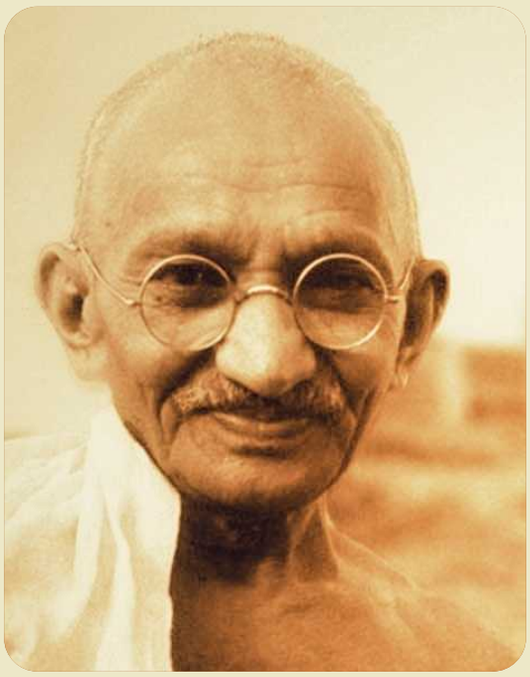

महात्मा गाँधी

स्वराज की मेरी अवधारणा के संबंध में लोगों के मन में कोई भ्रांति न रहे। विदेशी नियंत्रण से पूर्ण मुक्ति तथा पूर्ण आर्थिक स्वाधीनता ही स्वराज है। इसके लिए एक सिरे पर राजनीतिक स्वाधीनता तो दूसरे सिरे पर आर्थिक स्वाधीनता है। इसके दो और सिरे हैं। उनमें से एक नैतिक और दूसरा सामाजिक, जो दोनों धर्म के पर्याय हैं, एक उच्च प्रकार के धर्म के। इसमें हिंदु, इस्लाम, ईसाई इत्यादि धर्म समाहित तो हैं , लेकिन यह उन सबसे परे है।

इस तरह कहा जाए तो स्वराज एक वर्गाकार आकृति है, जिसमें यदि इसका एक सिरा भी विकृत हुआ तो स्वराज ही विकृत हो जाएगा।

(हरिजन के 02.01.1937 के अंक में प्रकाशित)

'' **शहर** में रहने वाले लोग शायद ही एहसास करें कि आधा पेट खाकर जीवन बसर करने वाली भारत की जनता किस तरह प्राणहीनता की स्थिति में गिरती जा रही है। वे शायद ही जानें कि उनका दयनीय सुख साधन विदेशी शोषकों के लिए उनके द्वारा दी हुई सेवा की दलाली है और यह दलाली और शोषकों का लाभ जनता का खून चूसने से आता है। वे शायद ही महसूस करें कि ब्रिटिश भारत में उनके द्वारा कानूनी ढंग से स्थपित सरकार का संचालन ही जनता के शोषण के लिए किया जाता है। इसके प्रमाण स्वरूप गांवों में जीवित नरकंकालों का जो दृश्य नंगी आंखों को भी साफ-साफ दिखलाई पड़ता है उसे कोई भी कुतर्क या आंकड़ों की जादूगरी झूठला नहीं सकता। मुझे जरा भी शंका नहीं है कि मानवता के विरूद्ध इस अपराध के लिए , जिसका शायद ही इतिहास में कोई जोड़ा हो, इंग्लैंड को और भारत के शहरवासियों दोनों को, इस कृत्य के लिए ईश्वर को, यदि उनका अस्तित्व है, जवाब देना पड़ेगा।

(अपने ऊपर लगाए गए देशद्रोह के अभियोग के मुकदमें में अंग्रेज जज के समक्ष गांधी जी द्वारा 18 मार्च 1922 को दिए गए वक्तव्य का अंश)

भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन विचार मंच का मुखपत्र

राष्ट्रीय कायाकल्प

वर्ष 2, अंक 5-6, अप्रैल 2015

संपादक
डा. त्रियुगी प्रसाद

संपादन सहयोगी
राजेश शुक्ल

सहायक संपादक
बिपेन्द्र

सहयोग राशि :
प्रति अंक रु. 30.00
व्यक्तिगत वार्षिक रु. 110.00
संस्थागत वार्षिक रु. 150.00

संपर्क :
173 बी, श्रीकृष्णपुरी
पटना 800001
टेलीफोन : 0612-2541276
email: rashtriyakayakalp@gmail.com

इस अंक में

संपादक की कलम से 2
नंगा राजा (कविता) 24
प्रश्नोत्तर के माध्यम से 31

दस्तावेज
गाँधी द्वारा वायसराय लॉर्ड इर्विन को लिखा गया पत्र **13**
गांधी की वसीयत **29**

भारत की गरीबीः शासन व्यवस्था की देन

भारत की जिस दरिद्रता और बदहाली को हम गुलामी का प्रतिफल मानते थे, जिस दरिद्रता और बदहाली का अनुभव कर और प्रत्यक्ष देखकर युग पुरुष महात्मा गाँधी हमारे स्वतंत्रता संग्राम से जुटे ही नहीं, इसके महानायक बने और जिनके प्रेरणादायी आह्वान पर असंख्य भारतीयों ने अपना बलिदान दिया, वह आज भी आजाद भारत को ग्रसित ही नहीं किए हुए है, बल्कि इसे बद से बदतर बना रही है।

5

भारत की गरीबी का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

खगोलीकरण के इस कारपोरेटी दौर में जब पूँजी मुट्ठी भर लोगों के हाथ में सिमटती जा रही है तो यह उम्मीद करना कि आम आदमी को उसके श्रम का उचित लाभ मिलेगा व्यर्थ है। योजनाएँ बनेंगी, बड़े–बड़े बयान दिये जायेंगे परन्तु अंतिम फैसला आमजन को ही करना होगा

21

हमारा संविधन, हमारा लोकतंत्र : उपलब्धियाँ, चुनौतियां और अपेक्षाएं

इतिहास गवाह रहेगा कि किस प्रकार व्यापक रूप से सभी लोकतंत्रात्मक संस्थाओं का गैर संस्थानीकरण और सभी उदात्त मूल्यों का अवमूल्यन हुआ। प्रतिनिधि संसदीय संस्थाएं निष्क्रिय और निष्प्रभावी होने लगीं।

17

भ्रष्टाचार के साये में भारतीय गरीबी की दारुण दशा
25

स्वामित्वाधिकारी, संपादक, प्रकाशक, मुद्रक डा. त्रियुगी प्रसाद द्वारा 173 बी, श्रीकृष्णपुरी, पटना 800001 से प्रकाशित एवं वातायन मीडिया एण्ड पब्लिकेशंस प्रा.लि., अयोध्या अपार्टमेंट, फ्रेजर रोड, पटना में मुद्रित

सम्पादक की कलम से...

'राष्ट्रीय कायकल्प' को समयपूर्वक निकालना हमारा लक्ष्य ही नहीं, प्रतिबद्धता भी है, तथापि जब तक राष्ट्र का कायाकल्प न हो जाय, उस आकांक्षित समय तक 'राष्ट्रीय कायाकल्प' का हर अंक देश की जीवंत और ज्वलंत समस्याओं और विकृतियों से जूझता रहेगा, उन पर प्रकाश डालेगा, उनकी समीक्षा करेगा और उनके समाधान की ओर इंगित करेगा। अतः 'राष्ट्रीय कायाकल्प' का हर अंक हर समय प्रासंगिक है।

प्रस्तुत है 'राष्ट्रीय कायाकल्प' का चौथा प्रकाशन और पाँचवे और छठे अंकों का संयुक्तांक। अपरिहार्य कारणों से इस बार भी हम पाँचवां अंक समय पर नहीं निकाल सके, जिससे हमें इसे अगले अंक के साथ विलय कर देना पड़ा है। आशा है कि भविष्य में समय पर प्रकाशित होने के अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में 'राष्ट्रीय कायाकल्प' सफल हो जायेगा। यद्यपि इस त्रैमासिक पत्रिका 'राष्ट्रीय कायकल्प' को समयपूर्वक निकालना हमारा लक्ष्य ही नहीं, प्रतिबद्धता भी है, तथापि जब तक राष्ट्र का कायाकल्प न हो जाय, उस आकांक्षित समय तक 'राष्ट्रीय कायाकल्प' का हर अंक देश की जीवंत और ज्वलंत समस्याओं और विकृतियों से जूझता रहेगा, उन पर प्रकाश डालेगा, उनकी समीक्षा करेगा और उनके समाधान की ओर इंगित करेगा। अतः 'राष्ट्रीय कायाकल्प' का हर अंक हर समय प्रासंगिक है।

'राष्ट्रीय कायाकल्प' भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्त्तन विचार मंच का मुखपत्र है। अतः इसका प्रमुख उद्देश्य है इस विचार मंच के विचारों को पाठकों के सम्मुख रखना, उन्हें जागरूक करना और उनमें उन्हें शिक्षित करना जिससे कि शासन व्यवस्था परिवर्त्तन अभियान में वे एक प्रबुद्ध नागरिक की भूमिका निभा सकें। इस विचार मंच का मूल विचार है, ''भारत की समस्याओं और विकृतियों की जननी है यहाँ की शासन व्यवस्था और शासन व्यवस्था परिवर्त्तन ही है इनका निदान''। 'राष्ट्रीय कायाकल्प' के प्रथम अंक में इस मूल विचार पर प्रकाश डाला गया है और विवेचना की गयी है। इसके बाद के अंकों में भारत की विभिन्न समस्याओं और विकृतियों का विश्लेषण कर यह दिखलाया गया है कि कैसे उनकी जड़ में भारत की वर्त्तमान शासन व्यवस्था है। मार्च 2014 के अंक में प्रकाशित 'राष्ट्रीय कायाकल्प' में इस बात को दर्शाया गया है कि इस शासन व्यवस्था में भारत का लोकतंत्र बहुत सीमित और भ्रामक है। जुलाई 2014 में प्रकाशित अंक में इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि भारत में भ्रष्टाचार की विभीषका यहाँ की शासन व्यवस्था के चलते है और इसका तब तक समाधान नहीं हो सकता जब तक यह शासन व्यवस्था रहेगी।

प्रस्तुत अंक में इस बात को उजागर करने का प्रयास किया गया है कि भारत की गरीबी यहाँ की शासन व्यवस्था की देन है। भारत की गरीबी को यदि ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा–परखा जाय या वर्त्तमान शासन व्यवस्था की विश्लेषणात्मक समीक्षा की जाय, या अनुभव आधारित इसकी विवेचना की जाय, यह एकदम साफ है कि भारत की गरीबी

इसकी शासन व्यवस्था की परिणति है। हजारों सालों के भारत के इतिहास में सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व तक भारत सभ्यता के ही नहीं, समृद्धि के शीर्ष पर भी या उसके आसपास रहा है। औरंगजेब के मुगल शासन काल तक भारत दुनिया की छठी अर्थव्यवस्था थी और कुल वैश्विक धन का एक चौथाई भाग सिर्फ भारत के पास था। सत्रहवीं शताब्दी में ईस्ट इंडिया कम्पनी का व्यापार के नाम पर भारत में आने के साथ भारत के धन का पलायन प्रारंभ हुआ, अठाहरवीं शताब्दी से भारत में कम्पनी राज की स्थापना के बाद भारत के धन की लूट और पलायन बड़े पैमाने पर शुरू हो गया और तभी से भारत में गरीबी और बदहाली का इतिहास प्रारंभ हो गया। इसके प्रतिरोध में उपजा 1857 ई. का मुक्ति संग्राम दबा दिया गया लेकिन कम्पनी की खुल्लम–खुल्ला लूट को भारत में विधिवत् ब्रिटिश राज स्थापित कर इसे शांतिपूर्ण और व्यवस्थित बना दिया गया। और ऐसा हुआ भारत पर एक ऐसी औपनिवेशिक शासन व्यवस्था थोपकर जो शोषणात्मक होने के साथ–साथ अनैतिकता–परक भी थी जिससे इस व्यवस्थित लूट में सहयोगी भारतीयों को भी इस लूट का कुछ भाग देकर – वेतन के रूप में, शुल्क के रूप में या भ्रष्टाचार के अवसर के रूप में – उनका नैतिक अधोपतन सुनिश्चित किया गया। औपनिवेशिक शासन व्यवस्था में उपनिवेश के प्राकृतिक और मानव संसाधनों का उपयोग कर उपनिवेश में ही धनोत्पादन की उतनी प्रेरणा नहीं रहती जितना उन संसाधनों का शोषण कर अपने देश का उत्पादन बढ़ाने में।

अतः स्पष्ट है कि उपनिवेश की बढ़ती गरीबी औपनिवेशिक शासन व्यवस्था की विशिष्टता है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के महानायक महात्मा गाँधी इस बात को बखूबी समझते थे और इसीलिए उनकी दिव्य दृष्टि में ऐसी शासन व्यवस्था को हटाना स्वतंत्रता संग्राम का लक्ष्य था, मात्र अंग्रेजों को भारत से भगाना नहीं। इस लक्ष्य को प्राप्त करने में राजनीतिक स्वतंत्रता पाना आवश्यक पड़ाव था, जहाँ हम उस महानायक के अलौकिक नेतृत्व में 15 अगस्त 1947 को पहुँच गए। उस पड़ाव से संग्राम के लक्ष्य तक पहुँचने के शेष संग्राम में हम उस दिव्य नेतृत्व से वंचित हो गए। भारत 26 जनवरी 1950 को जिस संविधान को अपना कर गणतंत्र बना, उसमें स्वतंत्र भारत के लिए मूलतः वही शासन व्यवस्था रखकर हम उस महानायक के मूल मंत्र को भूल गये और एक ऐतिहासिक भूल कर बैठे। अतः देश में दारिद्रीकरण की प्रक्रिया, जो 19वीं शताब्दी में विधिवत् प्रारंभ हुई, वह अनवरत जारी रही। वैश्विक धन में भारत की भागीदारी का प्रतिशत लगातार गिरता रहा है। जहाँ यह 1950 में 3 प्रतिशत थी, आज घटकर यह मात्र 1.45 प्रतिशत रह गयी है। वैसे भी, औपनिवेशिक शासन व्यवस्था का यदि विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाय तो इसमें गरीबी की अवश्यम्भाविता स्पष्ट परिलक्षित होगी। जिस शासन व्यवस्था का प्राथमिक उद्देश्य शासितों का शोषण हो, जो बेहद खर्चीली हो, जिसमें भ्रष्टाचार अनिवार्य रूप से व्याप्त हो, जिसमें सरकार में जनता की भ्रामक और निष्प्रभावी भागीदारी हो, और जो व्यवस्था धन उत्पादन और वितरण में घोर

प्रस्तुत अंक में इस बात को उजागर करने का प्रयास किया गया है कि भारत की गरीबी यहाँ की शासन व्यवस्था की देन है। भारत की गरीबी को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा–परखा जाय या वर्त्तमान शासन व्यवस्था की विश्लेषणात्मक समीक्षा की जाय, या अनुभव आधारित इसकी विवेचना की जाय, यह एकदम साफ है कि भारत की गरीबी इसकी शासन व्यवस्था की परिणति है। हजारों सालों के भारत के इतिहास में सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व तक भारत सभ्यता के ही नहीं, समृद्धि के शीर्ष पर भी या उसके आसपास रहा है। औरंगजेब के मुगल शासन काल तक भारत दुनिया की छठी अर्थव्यवस्था थी और कुल वैश्विक धन का एक चौथाई भाग सिर्फ भारत के पास था। सत्रहवीं शताब्दी में ईस्ट इंडिया कम्पनी का व्यापार के नाम पर भारत में आने के साथ भारत के धन का पलायन प्रारंभ हुआ, अठाहरवीं शताब्दी से भारत में कम्पनी राज की स्थापना के बाद भारत के धन की लूट और पलायन बड़े पैमाने पर शुरू हो गया और तभी से भारत में गरीबी और बदहाली

विकृतियों को जन्म देती हो, उसमें गरीबी कैसे नहीं होगी, चाहे लाख उपाय किये जायें? साठ सालों से ज्यादा के हमारे राष्ट्रीय अनुभव ने भी इसकी पुष्टि की है। विभिन्न नेताओं द्वारा निर्देशित, विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा संचालित तथा विभिन्न राजनीतिक विचारों और आर्थिक नीतियों को अपनाने वाली सरकारों ने गरीबी उन्मूलन के अनेक प्रयास किए। लेकिन देश में गरीबी का दंश बढ़ता ही गया है। जैसे–जैसे दवा की, मर्ज बढ़ता गया। स्पष्ट है कि बीमारी की हमारी पहचान ठीक नहीं है। और समय रहते हमने देश की बीमारी की असली पहचान कर तदनुसार उपचार नहीं किया तो गरीबी का दंश ही नहीं, देश इतनी विकृतियों से आक्रांत हो जायेगा, इसकी सभ्यता–संस्कृति इतनी बदरंग हो जायेगी कि जिस देश पर हम नाज करते हैं, उसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायेगा। देश में जहाँ कहीं कदाचार, भ्रष्टाचार और व्यभिचार की घटनाएं घटित होती हैं – और ऐसी अनेकों घटनाओं के घटित होने का समाचार हम नित्य समाचार माध्यमों में देखते, पढ़ते और जानते रहते हैं – हम यदि संवेदनहीन नहीं हो गये हों तो उस खतरे की घंटी सुन सकते हैं। यदि इन घटनाओं का हम सूक्ष्मतापूर्वक विश्लेषण करें तो पाएंगे कि इनकी जड़ में हमारी शासन व्यवस्था है। उदाहरण के तौर पर हाल में घटित पटना के एक प्रतिष्ठित, मान्यताप्राप्त उच्च विद्यालय में परीक्षा के लिए प्रवेश–पत्र लेने अपने पिता के साथ आयी छात्रा का बीस दिनों तक गायब रहने के मामले में पुलिस द्वारा जांच–पड़ताल में उस विद्यालय में बड़े पैमाने पर चल रहे धोखाधड़ी, जालसाजी, नाजायज पैसे की उगाही, एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार का आर्थिक शोषण, एक युवती का यौन शोषण और अन्य सर्वथा निंदनीय कारनामों का पर्दाफाश हुआ है। इसमें विद्यालय के प्राचार्य और कुछ अन्य शिक्षकों की संलिप्तता उजागर हुई है। कई लोगों का मानना है कि कमोबेश इसी तरह की बातें अन्य विद्यालयों में भी घटित होती रहती हैं। इस शासन व्यवस्था में शिक्षा तो एक आकर्षक व्यापार बन ही गई है, लेकिन शिक्षा का पवित्र प्रांगण इस तरह के कलंकित कृत्यों का स्थल बन जायेगा, यह इस शासन व्यवस्था में सर्वथा संभव है। तक्षशिला, नालंदा और विक्रमशिला विश्वविद्यालयों और गुरुकुल की परम्परा वाले इस देश में शिक्षा का क्षेत्र जब इस तरह विकृत हो जा सकता है तो देश और समाज के अन्य क्षेत्रों का क्या कहना। प्राकृतिक और मानव संसाधनों से सम्पन्न और हजारों वर्षों के इतिहास में समृद्धि की विरासत लिए भारत यदि पिछले दो–अढ़ाई सौ वर्षों से गरीबी का दंश झेल रहा है, जिसे मिटाने में गणतंत्र भारत भी सक्षम नहीं हो सका, तो आज इस पर गहन विचार मंथन करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य हो गया है। 'राष्ट्रीय कायाकल्प' का यह अंक यदि इस विचार मंथन में कुछ प्रकाश डाल सके तो हमारा प्रयास सार्थक होगा।

विभिन्न नेताओं द्वारा निर्देशित, विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा संचालित तथा विभिन्न राजनीतिक विचारों और आर्थिक नीतियों को अपनाने वाली सरकारों ने गरीबी उन्मूलन के अनेक प्रयास किए। लेकिन देश में गरीबी का दंश बढ़ता ही गया है। जैसे–जैसे दवा की, मर्ज बढ़ता गया। स्पष्ट है कि बीमारी की हमारी पहचान ठीक नहीं है। और समय रहते हमने देश की बीमारी की असली पहचान कर तदनुसार उपचार नहीं किया तो गरीबी का दंश ही नहीं, देश इतनी विकृतियों से आक्रांत हो जायेगा, इसकी सभ्यता–संस्कृति इतनी बदरंग हो जायेगी कि जिस देश पर हम नाज करते हैं, उसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायेगा। देश में जहाँ कहीं कदाचार, भ्रष्टाचार और व्यभिचार की घटनाएं घटित होती हैं – और ऐसी अनेकों घटनाओं के घटित होने का समाचार हम नित्य समाचार माध्यमों में देखते, पढ़ते और जानते रहते हैं – हम यदि संवेदनहीन नहीं हो गये हों तो उस खतरे की घंटी सुन सकते हैं।

त्रियुगी प्रसाद
पटना, 31 मार्च 2015

भारत की गरीबी :
शासन व्यवस्था की देन

एक ताजा आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार विश्व के 184 देशों में भारत 55वां निर्धनतम देश है। भारत से अधिक निर्धन देशों में अधिकांशतः अफ्रीका के देश हैं। विश्व के 129 देश भारत से अधिक समृद्ध हैं। संसाधनों से सम्पन्न इस भारत में यहाँ की गरीबी एक विडम्बना है। भारत के सम्बन्ध में किसी ने ठीक ही कहा है कि देश सम्पन्न है, देशवासी गरीब हैं। इस विडम्बना को समझने के लिए और उस समझ के आधार पर इसका निराकरण करने के लिए इसका ऐतिहासिक और समग्रतापूर्वक विश्लेषण अनिवार्य है।

भारत एक संसाधन समृद्ध देश है। संसार के संसाधन समृद्ध देशों में यह एक प्रमुख स्थान रखता है। उर्वर भूमि, जल संसाधन, कृषि अनुकूल जलवायु और इसकी मौसमी विविधता, प्रचुर खनिज और वन सम्पदा और प्रतिभा एवं कौशल सम्पन्न विशाल मानव संसाधन। वर्त्तमान के संदर्भ में इन सब संसाधनों के अतिरिक्त एक अपार युवा शक्ति भी भारत को प्राप्त है। फिर भी आज भारत विश्व के निर्धनतम देशों में एक है। एक ताजा आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार विश्व के 184 देशों में भारत 55वां निर्धनतम देश है। भारत से अधिक निर्धन देशों में अधिकांशतः अफ्रीका के देश हैं। विश्व के 129 देश भारत से अधिक समृद्ध हैं। संसाधनों से सम्पन्न इस भारत में यहाँ की गरीबी एक विडम्बना है। भारत के सम्बन्ध में किसी ने ठीक ही कहा है कि देश सम्पन्न है, देशवासी गरीब हैं। इस विडम्बना को समझने के लिए और उस समझ के आधार पर इसका निराकरण करने के लिए इसका ऐतिहासिक और समग्रतापूर्वक विश्लेषण अनिवार्य है।

विश्व और उसकी पृष्ठभूमि में भारत के पिछले पाँच हजार से अधिक के आर्थिक इतिहास पर गौर करें तो पाएंगे कि इस अवधि में विश्व में भारत सभ्यता के साथ–साथ समृद्धि के भी शीर्ष पर रहा है। उससे पूर्व ईसा पूर्व 3500 से लेकर ईसा पूर्व 1800 तक तो खेती, पुशपालन, परिवहन, काँसा और अन्य धातुओं के उपयोग और निकटवर्ती देशों से व्यापार पर आधारित भारत की सिंधुघाटी सभ्यता की समृद्धि और सम्पन्नता तो इतिहास प्रमाणित है। सिंधुघाटी की सभ्यता के अवसान के बाद भारत में लौह युग और वैदिक सभ्यता का उद्‌भव हुआ जिसका विकास मुख्यतः गंगा घाटी में हुआ। इस विकास के क्रम में भारत और इसके विभिन्न भागों में राजनीतिक परिदृश्य बदलते रहे। गणतांत्रिक ढंग से शासित बहुत से महाजन पद स्थापित हुए, राजतांत्रिक रूप से शासित बहुत से राज्य और साम्राज्य स्थापित हुए, उत्कर्ष के शीर्ष पर पहुँचे, पतनोन्मुख हुए और विलुप्त हुए। उनकी जगह नयी राजनीतिक इकाइयां स्थापित हुई और इसी तरह इनके उद्‌भव, उत्थान, पतन और अवसान का कालचक्र सत्रहवीं सदी के अंत और मुगल साम्राज्य के पतन तक चलता रहा। इस लंबी ऐतिहासिक अवधि में भारत में गरीबी का कहीं कोई जिक्र नहीं है। उदाहरण के तौर पर ईसा पूर्व 600 में आधुनिक

बिहार की गंगा के दक्षिण मगध महाजनपद की स्थापना हुई, जो तत्कालीन भारत में स्थापित 16 महाजनपदों में एक थी। इसी महाजनपद और मगध काल में ही जैन और बौद्ध, दो प्रमुख धर्मों का उद्‌भव हुआ। मगध महाजन पद के अवसान के बाद मगध में नंद वंश का राज्य स्थापित हुआ जिसके विनाश के पश्चात मगध में ईसा पूर्व 322 में मौर्य साम्राज्य स्थापित हुआ जिसका विस्तार पूर्व में असम से लेकर पश्चिम में अफगानिस्तान तक तथा उत्तर में हिन्दुकुश हिमालय से लेकर भारत के मध्य और दक्षिणी भागों में हुआ। इसी मौर्य वंश के सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार न केवल भारत में किया बल्कि चारों ओर के पड़ोसी देशों में भी इस धर्म का संदेश पहुँचाया जिसका प्रभाव आज भी कायम है। करीब 150 वर्षों तक राज्यासीन रहने के बाद भारतीय इतिहास के इस महत्त्वपूर्वण काल की भी समाप्ति हो गयी। लेकिन इस समाप्ति के साथ मगध क्षेत्र और उसकी जनता का गौरवपूर्ण इतिहास समाप्त नहीं हुआ, विकास नहीं रुका, मगध के भविष्य पर कोई चिरस्थायी ग्रहण नहीं लगा। कुछ ही वर्षों बाद मगध में ही केन्द्रित शुंग साम्राज्य शुरू हुआ और प्रायः 150 वर्षों तक राज्य करता रहा। शुंग काल में कला, साहित्य, शिक्षा, स्थापत्य कला, वास्तुकला, दर्शनशास्त्र आदि का उल्लेखनीय विकास हुआ। सम्राट अशोक के काल में निर्मित साँची का प्रसिद्ध बौद्ध स्तूप इसी काल में अपने वर्त्तमान भव्य रूप में आया। मगध क्षेत्र में ही भारत का स्वर्णिम युग कहा जाने वाला गुप्त साम्राज्य चौथी शताब्दी में स्थापित हुआ और दौ सौ वर्षों से अधिक अस्तित्व में रहा। इस काल में न केवल साम्राज्य का असाधारण विस्तार हुआ बल्कि विज्ञान, गणित, अंतरिक्ष विज्ञान, साहित्य, धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र इत्यादि क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रगति हुई। भारतीय सभ्यता और संस्कृति देदीप्यमान हो उठी इस युग में।

गुप्त साम्राज्य के बाद मगध क्षेत्र केन्द्रित भारत में कोई साम्राज्य नहीं हुआ। लेकिन भारत के अन्य भागों में कई सफल और समृद्ध राज्य और साम्राज्य स्थापित हुए, विकसित हुए और सभ्यता, संस्कृति और सम्पन्नता के उत्कर्ष पर अगले कई सदियों तक विराजमान रहे। इनमें छठी–सातवीं शताब्दी में मध्य भारत में केन्द्रित हर्ष साम्राज्य, दक्षिण भारत में केन्द्रित चालुक्य, चोला और राष्ट्रकुट के साम्राज्य, उत्तर भारत में गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य, तथा पूर्वी भारत के पाल और सेन साम्राज्य उल्लेखनीय हैं। आठवीं सदी से भारत के पश्चिमी भागों में अरब देशों के मुस्लिम मतावलंबी हमलावरों ने तथा पश्चिमी तटीय क्षेत्रों में मुस्लिम व्यापारी वर्गों ने प्रवेश करना शुरू किया। आठवीं सदी में भारत के पश्चिमी भाग में स्थित सिंध में मुस्लिम राज्य स्थापित हुआ। बाद में तुर्क शासक भारत के दक्षिणी भागों में अपना सल्तनत स्थापित करने में सफल हुए। तेरहवीं सदी में दक्षिण भारत में हिन्दू साम्राज्य के उदय और पराक्रम ने दक्षिण भारतीय सल्तनत के प्रसार को सीमित कर दिया। बारहवीं और तेरहवीं सदियों में तुर्क और अफगान हमलावरों ने हिन्दू राज्यों को पराजित कर उत्तर भारत में दिल्ली केन्द्रित अपनी सल्तनत कायम की। इस अवधि में हिंदू और मुस्लिम सभ्यताओं के अंतर्सम्बंधों ने संगीत, साहित्य, वास्तुकला और भाषा को प्रभावित किया। इसी अन्तर्सम्बंध ने उर्दू भाषा को भारत में जन्म दिया। फिर, सोलहवीं सदी में मध्य एशिया से आकर इस्लाम धर्मी मुगलों ने हिंदू राजाओं ओर मुसलमान सुल्तानों को अपने युद्ध कौशल से परास्त कर दिल्ली में अपना शासन स्थापित कर लिया और इसका विस्तार भारत के बड़े भूभाग में हो गया। प्रायः डेढ़–दो सौ वर्षों तक भारत में मुगल साम्राज्य कायम रहा। अठाहरवीं सदी में भारत के पश्चिमी भाग में मराठा और उत्तर–पश्चिमी भाग में सिख समुदायों का राजनीतिक वर्चस्व बढ़ने से मुगल साम्राज्य काफी कमजोर और सीमित हो गया। भारत के विभिन्न भागों में नवाब, निजाम, हिन्दू राजा और अन्य क्षेत्रीय शासक अपने क्षेत्रों में स्वाधीन हो गए और इस तरह भारत दुर्बल हो गया। इस स्थिति का लाभ ब्रिटेन की ईस्ट इंडिया कम्पनी, जो सत्रहवीं सदी के प्रारंभिक दशकों में भारत में अपने व्यापारिक हितों और तत्सम्बंधी गतिविधियों के लिए मुगल शासन में अधिकृत हुई थी, अपना शासन स्थापित करने की रणनीति में लग गई। मुगल साम्राज्य के ह्रास, क्षेत्रीय शासकों के पारस्परिक वैमनस्य और अपनी सैन्य और सांगठनिक क्षमता के बल पर भारत के बड़े भू–भाग पर ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन स्थापित हो गया। अपने व्यापारिक हितों ओर लाभ से प्रेरित हो कर आयी ईस्ट इंडिया कंपनी राजनैतिक वर्चस्व और शक्ति पाकर शोषण, अत्याचार और लूट–खसोट में लग गई। स्थिति जब दुःसह हुई तो

इससे मुक्ति पाने के लिए 1857 में ऐसे शासन के विरुद्ध विद्रोह हुआ जो एक तरह से भारत का प्रथम मुक्ति संग्राम ही था। यद्यपि अलग–अलग राजनीतिक इकाइयों में बँटा भारत का यह विद्रोही संग्राम असफल रहा, ब्रिटेन में यह संदेश गया कि ईस्ट इंडिया कम्पनी की खुल्लम–खुल्ला लूट–खसोट की राजनीति भारत में दीर्घकालिक नहीं हो सकती। एक तरफ तो ब्रिटेन और इसके लोग इस राजनीति से होने वाले आकर्षक लाभ से वंचित नहीं होना चाहते थे, तो दूसरी ओर उनकी चिन्ता थी कि भारत के लोगों में ऐसी राजनीति से असंतोष और विद्रोह की भावना न उभरे जिससे भारत में उनका अस्तित्व ही संकट में आ जाय। इस उद्देश्य से 1858 ई. में ब्रिटिश संसद ने एक कानून पारित कर भारत का शासन सीधा अपने हाथ में ले लिया और इस तरह भारत में ब्रिटिश राज कायम हो गया। हजारों वर्षों के भारत के इतिहास में भारत में स्थापित यह राज बाहर से आए लोगों द्वारा भारत में स्थापित अन्य राज्यों से महत्त्वपूर्ण अर्थों में भिन्न था। इसमें युद्ध कुशल कुछ व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह ने भारत में अपना राज्य नहीं स्थापित किया, बल्कि एक संगठित राष्ट्र ने पूरे भारत पर अपना राज्य या प्रभुत्व स्थापित कर लिया। इसका उद्देश्य यहाँ की सम्पन्नता और समृद्धि का उपभोग करते हुए यहाँ बसना नहीं था, बल्कि यहाँ की सम्पन्नता और समृद्धि के कारकों, या दूसरे शब्दों में यहाँ के प्राकृतिक और मानव संसाधनों का शोषण कर अपने देश की सम्पन्नता और समृद्धि को वहाँ के लोगों के हित में बढ़ाना था। अन्य शब्दों में कहें तो भारत ब्रिटेन का गुलाम बन गया। इस गुलामी का अर्थ सीधे रूप से शारीरिक यातना या प्रताड़ना से नहीं था। इसका अर्थ था ब्रिटेन की सम्पन्नता ओर समृद्धि के लिए भारत के प्राकृतिक ओर मानव संसाधनों का दोहन या शोषण। इसी से और यहीं से शुरू होती है भारत के दारिद्रीकरण की प्रक्रिया और गरीबी का इतिहास। इनसे पूर्व पाँच हजार वर्षों से अधिक के इतिहास में भारत में गरीबी कभी नहीं थी। यहाँ का जीवन स्तर सभ्यता के तत्कालीन विकास के अनुरूप था, लेकिन गरीबी का नामो–निशान नहीं था। सदियों तक भारत सभ्यता के विकास में विश्व में शीर्ष पर रहा है और तदनुरूप आर्थिक रूप में विश्व का नम्बर वन देश रहा है। प्राचीन और मध्ययुगीन काल में सत्रहवीं शताब्दी तक भारत में न सिर्फ विश्व की कई उच्च स्तरीय सभ्यताएं विकसित हुईं बल्कि विश्व का एक चौथाई से एक तिहाई तक धन का मालिक रहकर सबसे धनी देश भी रहा था। औरंगजेब के शासन के अन्त तक मुगल साम्राज्य के विघटन की प्रक्रिया प्रारंभ होने और ईस्ट इंडिया कम्पनी का विस्तार होने के पूर्व तक भारत विश्व की छठी बड़ी अर्थव्यवस्था थी। विश्व की अर्थव्यवस्था में 1700 ई. तक जहाँ भारत की हिस्सेदारी 27 प्रतिशत थी, वह ईस्ट इंडिया कंपनी और तत्पश्चात् ब्रिटिश राज के औपनिवेशिक शासन के अन्त तक घटकर 3 प्रतिशत हो गयी। भारत के आर्थिक अधोपतन की यह प्रक्रिया गणतंत्र भारत में बदस्तूर जारी है। प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद के आधार पर विश्व के देशों में जहाँ 1950 में भारत का स्थान 46वां था और उसके पास वैश्विक धन का 3 प्रतिशत धन था, वह नीचे खिसकते हुए आज 130वें स्थान पर पहुँच गया है और उसके पास वैश्विक धन का 1.45 प्रतिशत धन है।

1858 ई. में ब्रिटिश संसद ने एक कानून पारित कर भारत का शासन सीधा अपने हाथ में ले लिया और इस तरह भारत में ब्रिटिश राज कायम हो गया। हजारों वर्षों के भारत के इतिहास में भारत में स्थापित यह राज बाहर से आए लोगों द्वारा भारत में स्थापित अन्य राज्यों से महत्त्वपूर्ण अर्थों में भिन्न था। इसमें युद्ध कुशल कुछ व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह ने भारत में अपना राज्य नहीं स्थापित किया, बल्कि एक संगठित राष्ट्र ने पूरे भारत पर अपना राज्य या प्रभुत्व स्थापित कर लिया। इसका उद्देश्य यहाँ की सम्पन्नता और समृद्धि का उपभोग करते हुए यहाँ बसना नहीं था, बल्कि यहाँ की सम्पन्नता और समृद्धि के कारकों, या दूसरे शब्दों में यहाँ के प्राकृतिक और मानव संसाधनों का शोषण कर अपने देश की सम्पन्नता और समृद्धि को वहाँ के लोगों के हित में बढ़ाना था। अन्य शब्दों में कहें तो भारत ब्रिटेन का गुलाम बन गया।

यक्ष प्रश्न है कि भारत की जिस दरिद्रता और बदहाली को हम गुलामी का प्रतिफल मानते थे, जिस दरिद्रता और बदहाली का अनुभव कर और प्रत्यक्ष देखकर युग पुरूष महात्मा गाँधी हमारे स्वतंत्रता संग्राम से जुटे ही नहीं, इसके महानायक बने और जिनके

प्रेरणादायी आह्वान पर असंख्य भारतीयों ने अपना बलिदान दिया, वह आज भी आजाद भारत को ग्रसित ही नहीं किए हुए है, बल्कि इसे बद से बदतर बना रही है। क्या हमारा यह मानना कि भारत की दरिद्रता इसकी गुलामी से जुड़ी थी ठीक नहीं था या हमारी आजादी वह आजादी नहीं है जिसके लिए आजादी की लड़ाई लड़ी गयी थी। जहाँ तक पहली सम्भावना का प्रश्न है, हजारों सालों का इतिहास निर्विवाद रूप से साक्षी है कि भारत की दरिद्रता इसकी गुलामी से ही शुरू होती है, गुलामी से पूर्व भारत एक सम्पन्न और समृद्ध देश रहा है। अतः दूसरी सम्भावना कि 15 अगस्त 1947 को राजनीतिक स्वतंत्रता या 26 जनवरी 1950 की संवैधानिक गणतंत्रता भारत में उस आजादी को नहीं ला सकी जिसकी कल्पना स्वतंत्रता संग्राम में की गई थी, पर गंभीरता से विचार करना चाहिए। इसके लिए भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के महानायक महात्मा गाँधी की उन सभी बातों पर ध्यान देना चाहिए जिनमें उन्होंने भारत की आजादी को अभिकल्पित, परिभाषित और व्याख्यायित किया था – 1908 में लिखित अपनी पुस्तक ''हिन्द स्वराज'' से लेकर 29 जनवरी 1948 की रात्रि में कांग्रेस अध्यक्ष को सम्बोधित अपने अंतिम पत्र और अंतिम लेखन तक। उनका निश्चित मत था कि अंग्रेज हमारे दुश्मन नहीं, भारत की दरिद्रता और बदहाली के लिए अंग्रेजों द्वारा भारत पर थोपी गई शासन व्यवस्था, जो शोषणकारी और अनैतिकतापरक है, दोषी है। हमें ऐसी शासन व्यवस्था से मुक्ति चाहिए, अंग्रेज भारत में रहें या

जायें। उनकी दिव्य दृष्टि में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का लक्ष्य इस शोषणकारी और अनैतिकतापरक शासन व्यवस्था से मुक्ति है जिसके लिए राजनीतिक स्वतंत्रता अनिवार्य है, लेकिन पर्याप्त नहीं। 15 अगस्त 1947 को हमें राजनीतिक स्वतंत्रता मिली लेकिन उस शासन व्यवस्था से मुक्ति नहीं मिली। ब्रिटिश संसद द्वारा पारित ''भारतीय स्वतंत्रता कानून 1947'', जिसके तहत भारत ब्रिटिश शासन से मुक्त हुआ, उसमें स्वतंत्र भारत के लिए वही शासन व्यवस्था प्रावधानित थी जो उस समय भारत में लागू थी यानी गवर्नमेंट ऑफ इंडिया कानून 1935। हालांकि हम संविधान के माध्यम से उस शासन व्यवस्था से मुक्त होकर स्वतंत्र भारत के लिए महात्मा गाँधी के विचारों के अनुरूप एक नई शासन व्यवस्था स्थापित कर सकते थे, लेकिन निवर्तमान ब्रिटिश सरकार के कुचक्र, भारत के कुछ मुखर और सशक्त वर्गों के निहित स्वार्थ, महात्मा गाँधी के शीर्ष अनुयायियों में उनके विचारों और आदर्शों में अपूर्ण आस्था और तत्कालीन भारत की विषम परिस्थितियों के दुर्योग से हमने अपने संविधान में भी मूलतः वही शासन व्यवस्था अपना ली। यह दुर्योग भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की भीषण विडम्बना है। जिस महानायक के अहिंसक असहयोग के क्रान्तिकारक विचारों और अभूतपूर्व अस्त्र से एक वैश्विक शक्ति को परास्त कर और राजनीतिक स्वतंत्रता पाकर एक शोषणकारी और अनैतिकतापरक शासन व्यवस्था से मुक्त होने का लक्ष्य हासिल करने में सक्षम हो गए थे, उस महानायक की बातों और विचारों की अवहेलना कर मूलतः उसी शासन व्यवस्था को अपनाने की एक ऐतिहासिक भूल हम कर बैठे। इस भूल की जो भी विवेचना की जाय, जिस तरह से भी विश्लेषण किया जाय लेकिन डेढ़ सौ सालों से भी ज्यादा पहले भारत में स्थापित औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के फलस्वरूप भारत के दारिद्रीकरण की प्रक्रिया जो शुरू हुई वह स्वतंत्र और गणतंत्र भारत में भी निर्बाध चलती रही, यह उस ऐतिहासिक भूल की निर्विवाद संपुष्टि है। अलबत्ता गणतंत्र भारत में गरीबी का स्वरूप बदल गया है, गरीबों की प्रासंगिकता परिवर्त्तित हो गयी है।

गुलाम भारत में भारत के गरीब निस्सहाय और निरीह थे, हर तरह के अत्याचार – सरकारी मुलाजिमों और अफसरों से, जमींदारों से और धनियों से – सहने के लिए मजबूर थे। आज उन्हें वोट देने का राजनीतिक अधिकार प्राप्त है। हर पाँच साल में उसका उपयोग कर वे वर्त्तमान व्यवस्था से असंतोष और मोहभंग जाहिर कर सकते हैं या किसी नेता और दल की बातों के भ्रमजाल में पड़कर उसमें अपनी भावना, आशा और आकांक्षा व्यक्त कर सकते हैं। लेकिन साठ सालों से अधिक भारतीय गणतंत्र की यात्रा में हम यही देखते आए हैं कि जनता की भावना आहत हुई है, आशा क्षीण हुई है ओर आकांक्षा धूल–धूसरित हुई है। इस शासन व्यवस्था में सरकार में जनता की कोई असरदार भूमिका नहीं है, शतरंज के खेल में जनता सिर्फ एक प्यादा है, सशक्त चालों से लैस प्रभावी भूमिका तो अन्य मोहरों की है। इस तथाकथित लोकतंत्र में तो जनता, विशेषकर गरीब जनता, तो सत्ता की होड़ में एक वोट बैंक है, जिसका दोहन कभी जाति के नाम पर तो कभी मजहब के नाम पर बदस्तूर किया जाता रहा है। गरीबी मिटाने की क्षमता तो किसी भी नेता, दल या सरकार में नहीं रही है और न ही इस शासन व्यवस्था में हो सकती है, लेकिन गरीबों के काफी बड़े वोट बैंक को रिझाने के लिए हर हथकंडे अपनाए जाते हैं, चाहे वे जितना भी अतार्किक क्यों न हों। कभी ''गरीबी हटाओ'' का चुनावी नारा देकर; जो देश के लिए अन्न पैदा करते हो उन्हें खाद्यान्न की तथाकथित सुरक्षा मुहैया कर; जहाँ विकास की धारा प्रस्फुटित होना और फलतः रोजगार के अपार अवसर सृजित होना चाहिए वहाँ दिल्ली से चलकर आए पैसे से कृत्रिम ढंग से रोजगार सृजित करने की योजना बनाकर इस वोट बैंक का चुनावी लाभ लेने का बेहिचक प्रयास किया जता है। भारत के एक रेल मंत्री ने वातानुकूलित 'गरीब रथ' का ट्रेन चलाकर गरीबों को एक तोहफा देकर खुश करने की तरकीब अख्तियार की जो कुछ–कुछ हास्यास्पद भी है, क्योंकि भारत का गरीब उस रियायती तोहफे का उपयोग अपनी गरीबी के कारण करने में अक्षम है। यह तो अठाहरवीं शताब्दी में फ्रांसीसी क्रांति के पूर्व फ्रांस की एक राजकुमारी द्वारा कही गई उस बात की याद दिलाती है कि यदि लोगों के पास खाने को रोटी नहीं है तो वे केक क्यों नहीं खाते।

जैसा कि हमने देखा, प्रायः सौ वर्षों तक गुलाम भारत में अंग्रेजी हुकूमत के तहत तथा तत्पश्चात् साठ वर्षों से ज्यादा गणतंत्र भारत में भारतीयों द्वारा संचालित भारतीय संविधान सम्मत शासन के तहत भारत के दारिद्रीकरण की प्रक्रिया अनवरत जारी है। इन दोनों समयावधियों में जो एक चीज नहीं बदली वह है इस देश की शासन व्यवस्था, जो आजादी के बाद भी तात्विक रूप से वही रही जो आजादी के पहले थी। अतः यह तर्कसंगत और अनुभवजन्य निष्कर्ष है कि भारत के दारिद्रीकरण की प्रक्रिया यहाँ की शासन व्यवस्था में निहित है। यदि इस शासन व्यवस्था की विश्लेषणात्मक समीक्षा भी की जाय तो भी यही निष्कर्ष निकलेगा। इस विश्लेषणात्मक समीक्षा के कुछ बिन्दुओं पर नीचे प्रकाश डाला गया है:

1. शासन का शोषणात्मक स्वरूप : सात समुंदर पार बसे ब्रिटेन का भारत पर शासन का उद्देश्य भारत के समृद्धिकारक तत्त्वों यथा प्राकृतिक तथा मानव संसाधनों का अपने देश की समृद्धि के उद्देश्य से शोषण करना था। इन संसाधनों से जो धन पैदा होता था उसका अधिकांश भाग तो ब्रिटेन या ब्रिटेन वासियों को जाता था और कुछ भाग शोषण में सहायक और सहयोगी भारतीयों को मिलता था। लेकिन अंतिम रूप से शोषण का भार शेष भारतीयों को

विश्व की अर्थव्यवस्था में 1700 ई. तक जहाँ भारत की हिस्सेदारी 27 प्रतिशत थी, वह ईस्ट इंडिया कंपनी और तत्पश्चात् ब्रिटिश राज के औपनिवेशिक शासन के अन्त तक घटकर 3 प्रतिशत हो गयी। भारत के आर्थिक अधोपतन की यह प्रक्रिया गणतंत्र भारत में बदस्तूर जारी है। प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद के आधार पर विश्व के देशों में जहाँ 1950 में भारत का स्थान 46वां था और उसके पास वैश्विक धन का 3 प्रतिशत धन था, वह नीचे खिसकते हुए आज 130वें स्थान पर पहुँच गया है और उसके पास वैश्विक धन का 1.45 प्रतिशत धन है। यक्ष प्रश्न है कि भारत की जिस दरिद्रता और बदहाली को हम गुलामी का प्रतिफल मानते थे, जिस दरिद्रता और बदहाली का अनुभव कर और प्रत्यक्ष देखकर युग पुरूष महात्मा गाँधी हमारे स्वतंत्रता संग्राम से जुटे ही नहीं, इसके महानायक बने और जिनके प्रेरणादायी आह्वान पर असंख्य भारतीयों ने अपना बलिदान दिया, वह आज भी आजाद भारत को ग्रसित ही नहीं किए हुए है, बल्कि इसे बद से बदतर बना रही है।

वहन करना पड़ता था जो अपने दारिद्रीकरण से वहन करते थे। ऐसी शोषणात्मक व्यवस्था व्यवस्थित ढंग से शांतिपूर्वक लम्बे समय तक चलती रहे, इसके लिए आवश्यक था कि शोषण के सहयोगी और सहायक भारतीयों का नैतिक पतन सुनिश्चित किया जाय जिससे शोषण के अनैतिक कार्य में उनका सहयोग और सहायता मिलती रहे। अतः भारत पर थोपी गई शासन व्यवस्था शोषणात्मक के साथ–साथ अनैतिकतापरक भी थी। औपनिवेशिक भारत की शासन व्यवस्था भ्रष्टाचार आधारित और भ्रष्टाचार जनक थी। ब्रिटिश शासन में भ्रष्टाचार किसी अपराध की श्रेणी में नहीं आता था। गणतंत्र भारत में तो शासन का घोषित उद्देश्य जन कल्याण और विकास हो गया, लेकिन मूलतः औपनिवेशिक भारत की शासन व्यवस्था अपना लेने से गणतंत्र भारत में भ्रष्टाचार में बेतहाशा वृद्धि हुई, भ्रष्टाचार शोषण का पर्याय बन गया। इस भ्रष्टाचार जनित शोषण का लाभुक सात समुंदर पार का देश न होकर अपने ही देश के वे लोग हो गए जो शासन व्यवस्था से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े यथा सत्तासीन नेता और सरकारी पदाधिकारी और जो लोग इसमें सहायक और सहयोगी बने, यथा व्यापारी और व्यवसायी वर्ग। देश में काले धन की विशाल मात्रा इसी भ्रष्टाचार का परिणाम है। और इस सब भ्रष्टाचार और कालेधन का बोझ अंततः जनता पर ही पड़ता है जो अपनी गरीबी के रूप में इसे वहन करने को अभिशप्त है।

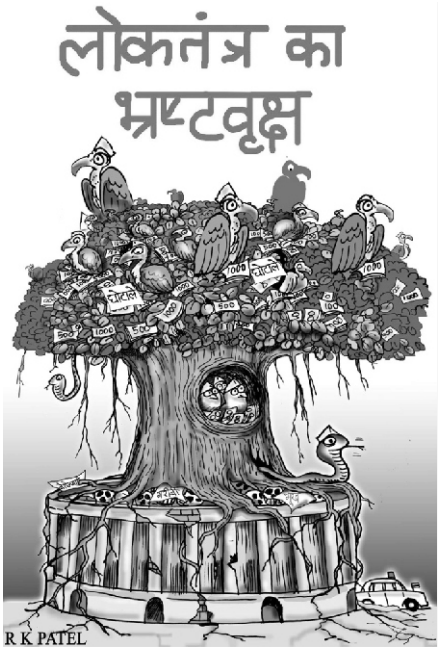

2. बेहद खर्चीली शासन व्यवस्था : 2 मार्च 1930 को भारत के तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड इर्विन को लिखे अपने पत्र में महात्मा गाँधी ने शासन व्यवस्था के शोषणात्मक स्वरूप के साथ इसके बेहद खर्चीलेपन को भी भारत की गरीबी के लिए जिम्मेदार ठहराया था। उन्होंने लिखा था कि तत्कालीन भारतीय शासन दुनिया का सबसे महँगा शासन था और इसका तार्किक चित्रण करते हुए लिखा था कि जहाँ ब्रिटिश शासन प्रधान वहाँ के प्रधानमंत्री का कुल वेतन ब्रिटेन की औसत आय से 90 गुना था, भारत के वाइसराय का कुल वेतन भारत की औसत आय से 5000 गुना से भी ज्यादा था। और इसका भार भारत की गरीब जनता ही वहन करती थी। आज भी स्थिति बहुत भिन्न नहीं है। एक उदाहरण और प्रतीक के तौर पर ही देखा जाय तो भारत के राष्ट्रपति दुनिया के सबसे भव्य राजभवन में रहते हैं और उनका कुल वेतन औसत भारतीय आय से उसी तरह ज्यादा है। सरकार की निम्नतम श्रेणी के लोकसेवक के कुल वेतन की तुलना भारत के अंतिम व्यक्ति की आय से तो की ही नहीं जा सकती।

भारत के शासन का शोषणात्मक स्वरूप का अर्थ है लूट खसोट की व्यवस्था। और जहाँ ऐसी व्यवस्था रहेगी वहाँ सामाजिक अशांति और अन्तर्विद्रोह स्वाभाविक है। अतः विधि व्यवस्था कायम रखना शासन के उत्तरदायित्वों का असामान्य रूप से बड़ा भाग है जिसका खर्च सर्वथा अनुत्पादक है। शासन द्वारा सम्पादित होने वाला कोई भी कार्य हो – विकास का, सुरक्षा का या चुनाव सम्पन्न कराने का – इसके व्यय का अच्छा खासा भाग इसी अनुत्पादक काम में लग जाता है, जिससे शासन खर्चीला हो जाता है और उसका भार वहन जनता को करना पड़ता है। उदाहरण के तौर पर देखा जाय तो एक आम चुनाव सम्पन्न कराने में शासन का प्रत्यक्ष रूप से जो वित्तीय और अन्य संसाधन लगता है उसका बोझ जनता पर तो पड़ता ही है, देश का विकास और अन्य गतिविधियां भी कुप्रभावित होती है जिनका अप्रत्यक्ष आर्थिक कुप्रभाव देश पर पड़ता है।

3. शासन में व्याप्त भ्रष्टाचार और गरीबी : औपनिवेशिक शासन व्यवस्था की दो विशेषताएं थीं – एक तो यह शोषणात्मक थी और दूसरा यह अनैतिकतापरक थी, और इन दोनों विशेषताओं के फलस्वरूप भ्रष्टाचार शासन का अभिन्न अंग था और विभिन्न रूपों में हर स्तर पर व्याप्त था। मूलतः वही शासन व्यवस्था अपना लेने से गणतंत्र भारत की शासन व्यवस्था में भी भ्रष्टाचार विभिन्न रूपों और मात्राओं में सर्वत्र व्याप्त है। काले धन की उत्पत्ति भ्रष्टाचार से ही होती है। एक अनुमान के अनुसार देश के सकल घरेलू उत्पाद

का एक तिहाई भाग काले धन के रूप में है। भ्रष्टाचार और काला धन देश के आम लोगों की जेबों से निकलकर गिने–चुने व्यक्तियों के पास एकत्र हो जाता है जो गरीबी का एक महत्त्वपूर्ण कारक और प्रतीक है।

4. सरकार में जनता की निष्प्रभावी भागीदारी और गरीबी : वर्त्तमान शासन व्यवस्था में सरकार में जनता की सीधी भागीदारी नहीं है और जो है वह इतना घुमा–फिरा के है कि वह कार्य रूप में अप्रभावी है। शासन के इस स्वरूप के चलते सार्वजनिक जीवन के ऐसे आयाम जो लोगों के दिन–प्रतिदिन की जिंदगी से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हैं कुप्रभावित होते हैं और उनका निराकरण करने में जनता निस्सहाय और असमर्थ रहती है। इसका स्पष्ट उदाहरण शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में है। कल्याणकरी राज्य में, जहाँ इन क्षेत्रों में राज्य की महती भूमिका है जैसा कि नब्बे के दशक के तथाकथित आर्थिक सुधारों के पूर्व भारतीय गणतंत्र में था, जनता निम्नस्तरीय और सीमित शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएं ही पाने को अभिशप्त थी। फलस्वरूप, जनता की उत्पादकता सीमित थी जिसके चलते वे गरीबी का दंश झेलने के लिए मजबूर थे। तथाकथित आर्थिक सुधारों के बाद ये क्षेत्र माँग और आपूर्त्ति के सिद्धांतों से परिचालित और आर्थिक लाभ से प्रेरित व्यापार के आकर्षक क्षेत्र बन गए हैं जहाँ गुणवत्ता और विश्वसनीयता गौण हो गई है। इन अनिवार्य सेवाओं के लिए कर के अलावा इन खर्चों का बोझ जनता ढोने के लिए मजबूर हो गई है जो गरीबी बढ़ाने, इसे दुःसह बनाने तथा समाज में नागरिकों का स्तरीकरण करने में कारक बन गया है।

5. वर्त्तमान शासन व्यवस्था में धन उत्पादन और वितरण की घोर विकृति और गरीबी : किसी देश की गरीबी दो बातों पर निर्भर करती है – कितना धन पैदा होता है और वह धन किस तरह से देश के विभिन्न वर्गों और व्यक्तियों में वितरित होता है। धन पैदा होता है प्राकृतिक संसाधनों यथा जल, जमीन, जंगल, जलवायु और खनिज, तथा मानव संसाधन के समुचित संयोग से। इस संयोग को सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न कार्यकलापों में ज्ञान, विज्ञान, तकनीकी तथा मानव श्रम का निवेश आवश्यक है। फिर इस संयोग से उत्पादित धन का समाज के विभिन्न वर्गों एवं व्यक्तियों में वितरण सुनिश्चित करने के लिए शासन व्यवस्था के अन्तर्गत नियम और कानून बनते हैं। अतः समाज में कितनी और कैसी गरीबी है, यह इस बात पर निर्भर करती है कि देश में कितना धन पैदा होता है और उत्पादित धन समाज के विभिन्न वर्गों और व्यक्तियों में कैसे बंटता है। जहां तक 'कितना धन' पैदा होने का प्रश्न है, यह निर्भर करता है एक तो देश में उपलब्ध मानव संसाधनों की मात्रा और गुणवत्ता पर तथा दूसरे इस बात पर कि धनोत्पादन के लिए कितने प्रभावी ढंग से उनका प्राकृतिक संसाधनों से संयोग होता है। इस बात का संबंध शासन व्यवस्था से है। और जैसा कि ऊपर चिह्नित है, समाज में धन का वितरण शासन व्यवस्था पर आधारित है।

उपर्युक्त संदर्भ में भारत की गरीबी को समझना मुश्किल नहीं है और न यही समझना मुश्किल है कि यह क्यों है और इसका निदान क्या है। एक ओर तो यह समझना है कि देश में कितना धन पैदा हो रहा है और कितने धन पैदा होने की स्पष्ट संभावना है तथा दूसरी ओर, उत्पादित धन समाज के विभिन्न वर्गों और व्यक्तियों में कैसे वितरित हो रहा है और कैसे वितरित होना चाहिए।वितरण व्यवस्था में क्या विकृतियां हैं और उनका क्या निदान है। वर्त्तमान भारतीय अर्थव्यवस्था में बहुत से उदाहरण हैं जो यह स्पष्ट करते हैं कि भारत में संभावना से काफी कम धन पैदा हो रहा है ओर उत्पादित धन की वितरण व्यवस्था में भीषण विकृतियाँ हैं। इन दोनों समस्याओं की जड़ में शासन व्यवस्था और तद्जनित राजनीति है। कुछ उदाहरण पर गौर कीजिए। भारतीय

प्रायः सौ वर्षों तक गुलाम भारत में अंग्रेजी हुकूमत के तहत तथा तत्पश्चात् साठ वर्षों से ज्यादा गणतंत्र भारत में भारतीयों द्वारा संचालित भारतीय संविधान सम्मत शासन के तहत भारत के दारिद्रीकरण की प्रक्रिया अनवरत जारी है। इन दोनो समयावधियों में जो एक चीज नहीं बदली वह है इस देश की शासन व्यवस्था, जो आजादी के बाद भी तात्विक रूप से वही रही जो आजादी के पहले थी। अतः यह तर्कसंगत और अनुभवजन्य निष्कर्ष है कि भारत के दारिद्रीकरण की प्रक्रिया यहाँ की शासन व्यवस्था में निहित है। यदि इस शासन व्यवस्था की विश्लेषणात्मक समीक्षा भी की जाय तो भी यही निष्कर्ष निकलेगा।

उपमहाद्वीप का पूर्वोत्तर भाग (पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, नेपाल और पश्चिम बंगाल) कृषि की दृष्टि से प्राकृतिक संसाधनों में सबसे सम्पन्न क्षेत्र है। उपजाऊ भूमि, सतही और भूगर्भीय जल से परिपूर्ण, सालों भर विभिन्न मौसमों में कृषि के अनुकूल जलवायु और कृषि संस्कृति से सम्पन्न विशाल मानव संसाधन के रहते हुए भी यह क्षेत्र भारत का निर्धनतम और विश्व के निर्धनतम क्षेत्रों में एक समझा जाता है। हाल के एक अध्ययन के अनुसार यदि इस क्षेत्र के प्राकृतिक और मानव संसाधनों को आधुनिक ज्ञान आधारित तकनीकी अपना कर इसके जल और सम्बद्ध संसाधनों का समेकित विकास और प्रबंधन किया जाय तो इस क्षेत्र का कृषि उत्पादन कम से कम दस गुना बढ़ जायेगा जिससे यहाँ एक तरह की आर्थिक क्रांति हो जायेगी। स्वतंत्रता के साठ से ज्यादा वर्षों के बाद भी इस ओर कोई ठोस काम नहीं किया गया क्योंकि इस देश की शासन व्यवस्था और तद्जनित राजनीति में इसके लिए कोई प्रेरणा नहीं है।

इस शासन व्यवस्था में उत्पादित धन के सामाजिक वितरण की जो गंभीर विकृतियां है, उसके दो उदाहरण दिये जाते है। एक तो इस बात से सम्बंध रखता है कि विभिन्न कामों के लिए विभिन्न व्यक्तियों या वर्गों को जो पारिश्रमिक, वेतन या शुल्क मिलता है उसमें क्या विकृति है। उदाहरण के तौर पर एक किसान को दिन भर खेतों में मेहनत कर मजदूरी के रूप में यदि X रुपये मिलता है तो एक उच्च या उच्चतम न्यायालय के अधिवक्ता को न्यायालय में किसी मुकदमें में बहस करने का शुल्क बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि उसकी बहस से अनुकूल निर्णय की स्थिति में मुवक्किल को कितना आर्थिक लाभ मिलता है या वह कितनी आर्थिक हानि से बचता है। अनुमानतः अधिवक्ता को जो शुल्क मिलता है वह कम से कम 100X होगा। यदि कोई 100X की इस राशि का लेखा जोखा लगावे – यह कहाँ से और कैसे आता है, कहाँ और कैसे जाता है तो इससे न सिर्फ देश और समाज की आर्थिक गतिविधियों में निहित विकृति पर बल्कि देश और समाज की अन्य विकृतियों पर भी प्रकाश पड़ेगा। जो भी हो, किसान के पारिश्रमिक और अधिवक्ता के शुल्क की विसंगति न सिर्फ हमारे देश के दारिद्रीकरण की प्रक्रिया और स्थिति को उजागर करती है बल्कि हमारे समाज और शासन व्यवस्था की विकृतियों पर भी प्रकाश डालती है। दूसरा उदाहरण लें कि एक बीमार व्यक्ति को देश में प्रचलित स्वास्थ्य सेवा की स्थिति में जो दवा खरीदनी पड़ती है उसका लागत खर्च यदि Y रु. है तो उसे खरीदना पड़ता है अनुमानतः 50Y रु. पर। लागत और बाजार मूल्य का यह अंतर 49Y समाज के विभिन्न वर्गों और व्यक्तियों में वितरित होता है। कौन–कौन से वर्ग और व्यक्ति बीमार व्यक्ति की जेब से निकले पैसे के लाभुक हैं, यदि इसका विश्लेषण किया जाय तो यह न सिर्फ बीमार व्यक्ति की गरीबी को समझने में सहायक होगा बल्कि हमारी शासन और सम्बद्ध व्यवस्थाओं की विकृतियों पर भी प्रकाश डालेगा। इस तरह हम देखते हैं कि हमारे देश की गरीबी के दो कारक हैं, एक तो संभावना से बहुत कम धन पैदा हो रहा है और दूसरा उत्पादित धन का वितरण विभिन्न व्यक्तियों और वर्गों में ऐसे हो रहा है जिससे गरीबी का पूरा भार आम जनता पर पड़ रहा है, जैसे पिरामिड का पूरा भार उसके विस्तृत आधार पर पड़ता है। और इन दोनों प्रक्रियाओं, धनोत्पादन और धन वितरण, की विसंगति वर्त्तमान शासन व्यवस्था की विकृतियों के फलस्वरूप है।

अतः स्पष्ट है कि भारत, जो अपने हजारों सालों के इतिहास में सर्वदा एक समृद्ध राष्ट्र रहा है, का दारिद्रीकरण शुरू हुआ जब से यहाँ 1757 ई. के पलासी युद्ध के बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी का राज स्थापित हुआ और यह व्यवस्थित और शांतिपूर्ण ढंग से अनवरत चलता रहा जब भारत विधिवत एक उपनिवेश के रूप में 1858 ई. में ब्रिटिश राज बन गया। इसके दारिद्रीकरण की प्रक्रिया भारत पर थोपी गई औपनिवेशिक शासन व्यवस्था में अन्तर्निहित थी। भारत की स्वतंत्रता के बाद भी यह प्रक्रिया चलती रही है क्योंकि गणतंत्र भारत में भी मूलतः वही शासन व्यवस्था कार्यरत है।

सबसे खतरनाक होता है
मुर्दा शांति से भर जाना
ना होना तड़प का
सब कुछ सहन कर जाना
घर से निकलना काम पर
और काम से लौट घर आना
सबसे खतरनाक होता है
हमारे सपनों का मर जाना
–पाश

महात्मा गाँधी क्यों समझते थे कि ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन भारत के लिए एक अभिशाप था?

भाग – 2

(इसका भाग–1 राष्ट्रीय कायाकल्प के पिछले अंक में प्रकाशित हुआ था)

नमक सत्याग्रह और दांडी मार्च शुरू करने से पूर्व गाँधी द्वारा 2 मार्च, 1930 को वाइसराय लॉर्ड इर्विन को लिखा गया पत्र

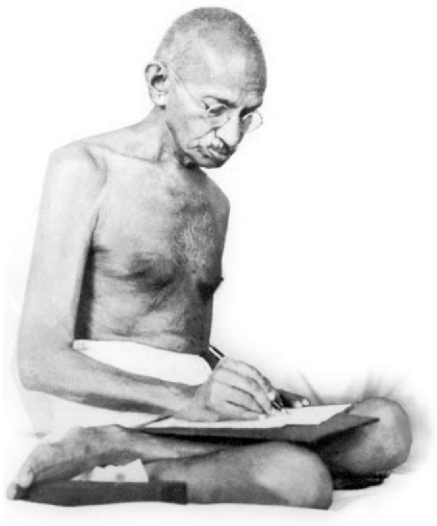

प्रिय मित्र,

सविनय अवज्ञा पर जाने से पहले और तीन सालों से जिस जोखिम को लेने से मैं डर रहा था उसे लेने से पहले मैं आपसे फिर सम्पर्क कर एक रास्ता निकालना चाहता हूँ।

मेरी व्यक्तिगत आस्था एकदम स्पष्ट है। मनुष्य समुदाय की तो बात दूर है, मैं किसी भी जीवित जीव को जानबूझ कर कोई चोट नहीं पहुँचा सकता, भले ही वे मुझे या मेरे नजदीकी व्यक्ति को कुछ भी क्षति पहुँचाए। अतः, यद्यपि मैं ब्रिटिश शासन को एक अभिशाप समझता हूँ, मैं एक भी अंग्रेज व्यक्ति को या भारत में उनके किसी न्यायपूर्ण हित को कोई भी क्षति नहीं पहुँचाना चाहता।

मुझे गलत नहीं समझा जाय। यद्यपि मैं भारत में ब्रिटिश शासन को एक अभिशाप समझता हूँ, लेकिन ऐसा मैं नहीं मानता कि इसीलिए आमतौर पर अंग्रेज लोग इस पृथ्वी पर अन्य लोगों की अपेक्षा बुरे हैं। यह मेरा सौभाग्य है कि मैं यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि बहुत से अंग्रेज मेरे प्रियतम मित्र हैं। वास्तव में स्पष्टवादी और उन साहसी अंग्रेजों की रचनाओं को पढ़कर मुझे ब्रिटिश शासन की बुराइयों को जानने का ज्यादा मौका मिला जिन्होंने उस शासन के कटु सत्यों को कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं की।

और क्यों मैं ब्रिटिश शासन को एक अभिशाप समझता हूँ? इसने एक उत्तरोत्तर शोषण करने वाली और एक कमरतोड़ खर्चीली सैन्य और असैन्य शासन व्यवस्था, जिसके लिए यह देश कभी समर्थ नहीं था, अपनाकर करोड़ों मूक भारतीयों को दरिद्र बना दिया। राजनीतिक रूप से इसने हमें दास बना दिया। इसने हमारी संस्कृति की जड़ को अशक्त कर दिया। और निःशस्त्रीकरण का पाठ पढ़ाकर हमें आध्यात्मिक रूप से भ्रष्ट कर दिया। इस तरह अपनी आंतरिक शक्ति खोकर इस विश्व में, जहाँ सार्वभौम निःशस्त्रीकरण नहीं हुआ है, हमारे देश को एक डरपोक निस्सहाय देश बना दिया।

हमारे बहुत से देशवासियों की तरह मैं भी इस भोली आशा से चिपका रहा कि प्रस्तावित गोलमेज कॉन्फ्रेंस से कुछ हल निकलेगा। लेकिन जब आपने साफ–साफ कह दिया कि आप कोई ऐसा आश्वासन नहीं दे सकते कि आप या ब्रिटिश मंत्रिपरिषद भारत के लिए पूर्ण 'डोमिनियन स्टेटस' की योजना को समर्थन देने के लिए प्रतिबद्ध है तो इस गोलमेज कॉन्फ्रेंस से कोई ऐसा हल निकलेगा जिसके लिए मुखर भारत चेतन रूप से और करोड़ों मूक भारतीय अचेतन रूप से उत्सुक हैं, इसकी आशा क्षीण है। फिर यह तो कहना ही व्यर्थ है कि संसद से किसी फैसले की प्रत्याशा का कभी कोई प्रश्न ही नहीं था। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं कि संसद के फैसले की प्रत्याशा में ब्रिटिश मंत्रिपरिषद एक विशेष नीति के लिए प्रतिबद्ध हो।

दिल्ली वार्त्ता की विफलता के बाद पंडित मोतीलाल नेहरू और मेरे लिए 1928 के कांग्रेस अधिवेशन में पारित पावन संकल्प को कार्यान्वित करने के लिए कदम उठाने के सिवा कोई और विकल्प नहीं था।

लेकिन आपकी घोषणा में उल्लिखित 'डोमिनियन स्टेटस' का प्रयोग यदि इसके सर्वमान्य अर्थ में किया गया है तब स्वतंत्रता की घोषणा से घबड़ाने की कोई बात नहीं है। क्योंकि क्या ऐसा नहीं है कि विश्वसनीय ब्रिटिश राजनेताओं ने स्वीकार किया है कि 'डोमिनियन स्टेटस' एक तरह से स्वतंत्रता ही है? लेकिन मेरी यह आशंका है कि भारत को सन्निकट भविष्य में 'डोमिनियन स्टेटस' देने का कभी कोई इरादा नहीं रहा है। लेकिन यह सब बीता हुआ इतिहास है। घोषणा के बाद बहुत सी घटनाएं घटित हुई हैं जिनसे ब्रिटिश नीति की दिशा का साफ पता चलता है।

यह दिन के प्रकाश जैसा साफ–साफ दिखता है कि जिम्मेदार ब्रिटिश राजनेता ब्रिटिश नीति में ऐसे किसी परिवर्त्तन की बात नहीं सोचते हैं जिससे भारत के साथ ब्रिटेन का व्यापार कुप्रभावित हो या जिससे भारत के साथ ब्रिटेन के लेने देन की कोई निष्पक्ष और गहन समीक्षा अपेक्षित हो। यदि शोषण की प्रक्रिया को समाप्त करने के लिए कुछ नहीं किया जाय तो द्रुतगति से भारत का खून चूसा जाता रहेगा। वित्त मंत्री 1/6 के अनुपात को एक तय बात मानते हैं, जिससे कलम के एक झटके से भारत का कुछ करोड़ रूपया बहकर बाहर चला जाता है। और जब सीधी कार्रवाई के लिए एक असैन्य तरीके से बहुत बातों के साथ इस बात को उलटने के लिए गंभीर प्रयास किया जा रहा है तो ऐसी व्यवस्था, जो भारत को पीस कर रख देती है, के नाम पर इस प्रयास को नाकाम करने के लिए आप भी भूमि सम्पन्न वर्गों से सहायता मांगने से बाज नहीं आते।

जब तक वे लोग जो देश के नाम पर देश के लिए काम करते हैं यह नहीं समझते और दूसरे सम्बद्ध लोगों को भी यह नहीं समझाते कि स्वतंत्रता प्राप्ति की लालसा के पीछे उद्देश्य क्या है तब तक ऐसा खतरा बना रहेगा कि जो स्वतंत्रता हमें मिलेगी वह इस तरह आवेशित होगी कि करोड़ों मूक मेहनतकश लोगों के लिए, जिनके लिए यह स्वतंत्रता अपेक्षित है और जिनके लिए ही स्वतंत्रता लेने का कोई अर्थ है, यह स्वतंत्रता बेकार साबित होगी। इसी कारण मैं इन दिनों जनता से कहता रहा हूँ कि स्वतंत्रता का अर्थ क्या होना चाहिए।

मैं आपके समक्ष कुछ प्रमुख बिन्दुओं को रखना चाहता हूँ। भूमि राजस्व, जो पूरे राजस्व का एक बड़ा भाग है, के भयानक बोझ को स्वतंत्र भारत में काफी संशोधित करना होगा। स्थायी बन्दोबस्ती जिसकी बहुत शेखी बघारी जाती है सिर्फ कुछ धनी जमींदारों को ही लाभ पहुँचाती है, रैयत को नहीं। रैयत हमेशा की तरह असहाय ही रहा है। वह तो ज्यादातर जमींदारों की मर्जी पर रहने वाला काश्तकार ही है। इसलिए न सिर्फ भूमि राजस्व को काफी कम करना है, बल्कि पूरी राजस्व व्यवस्था को इस तरह से संशोधित करना है कि रैयत की भलाई इसकी प्राथमिक चिन्ता हो। लेकिन लगता है कि ब्रिटिश व्यवस्था इस तरह अभिकल्पित है जिससे रैयत पूरी तरह पिस जाय। यहाँ तक कि नमक, जो उसके जीने के लिए मूलभूत आवश्यकता है, पर भी इस तरह कर लगाया गया है कि हृदयहीन निष्पक्षता के नाम पर सबसे ज्यादा भार उसी पर पड़े। जब हम यह याद करें कि नमक एक ऐसी चीज है कि वैयक्तिक रूप से या सामूहिक रूप से एक गरीब आदमी को धनी आदमी की तुलना में ज्यादा नमक खाना अनिवार्य है, तो यह स्पष्ट होगा कि यह कर गरीब के लिए ज्यादा बोझिल है। मद्य और औषधि राजस्व भी गरीबों से ही उगाहा जाता है। यह उनके स्वास्थ्य और नैतिकता दोनों पर जड़ से प्रहार करता है। वैयक्तिक स्वतंत्रता की झूठी दलील देकर इसकी सफाई दी जाती है, लेकिन वास्तव में मात्र राजस्व के लिए ही यह लगाया गया है। 1919 के सुधारों के पटु प्रवर्त्तकों ने इस राजस्व को द्वितन्त्रीय शासन प्रणाली के तथाकथित उत्तरदायित्वपूर्ण भाग के खाते में डाल दिया जिस से अब मद्यनिषेध लागू करने का भार इस पर आ गया, जिससे इसे लागू करने में यह सदा के लिए अशक्त हो गया। यदि बेचारा मंत्री मद्य निषेध कर इस राजस्व को खत्म कर देता है, तो इसका खामियाजा शिक्षा को भुगतना पड़ेगा क्योंकि अभी की व्यवस्था में इसकी भरपाई करने के लिए

कोई दूसरा श्रोत नहीं है। एक तरफ तो कर के भार से गरीब दबा हुआ है, दूसरी ओर हस्तबुनाई जैसे केन्द्रीय अनुपूरक उद्योग के विनाश से धन पैदा करने की उसकी क्षमता भी क्षीण हो गई है। भारत के नाम पर कितनी देनदारी हो गई है, इसका बिना जिक्र किए इसकी बर्बादी की कहानी अधूरी है। हाल के दिनों में इस बात के सम्बंध में सार्वजनिक पत्रकारिता में काफी कुछ कहा गया है। स्वतंत्र भारत का यह कर्त्तव्य होगा कि इन सब देनदारियों की अच्छी तरह जाँच–पड़ताल करवाए और किसी निष्पक्ष अधिकरण द्वारा जो देनदारी अनुचित और अन्यायपूर्ण पाई जाय उसे नकार दिया जाय। एक विदेशी शासन के संचालन के लिए, जो स्पष्टतः दुनिया का सबसे महंगा शासन है, नमूने के तौर पर दर्शायी गयी उपर्युक्त विसंगतियों को कायम रखा जाता है। आप अपने ही वेतन को लीजिए। यह 21,000 रु. प्रतिमाह है जिसके अलावा बहुत अन्य अप्रत्यक्ष अनुलाभ भी हैं। ब्रिटने के प्रधानमंत्री का वेतन 5,000 पाउंड प्रतिवर्ष है यानी अभी के विनिमय दर से 5,400 रु. प्रतिमाह से थोड़ा अधिक। आप प्रतिदिन 700 रु. से थोड़ा अधिक पाते हैं जबकि भारत की औसत आमदनी दो आना प्रतिदिन है। ब्रिटेन के प्रधानमंत्री 180 रु. प्रतिदिन के हिसाब से वेतन पाते हैं जब कि वहाँ की औसत दैनिक आमदनी करीब 2 रु. है। इस तरह आप भारत की औसत आमदनी से 5000 गुना से बहुत अधिक वेतन पाते हैं, जब कि ब्रिटेन के प्रधानमंत्री वहाँ की औसत आमदनी से सिर्फ 90 गुना अधिक वेतन पाते है। मेरी आपसे करबद्ध प्रार्थना है कि आप इस बात पर गौर फरमाएं। एक कटु सत्य को उजागर करने के लिए मैंने एक व्यक्तिगत उदाहरण का सहारा लिया है। मैं एक व्यक्ति के तौर पर आपका बहुत सम्मान करता हूँ और आपकी भावनाओं को कतई ठेस नहीं पहुँचाना चाहता हूँ। मुझे मालूम है कि जो वेतन आप पाते हैं उसकी आपको आवश्यकता नहीं है। संभवतः आपका पूरा वेतन परोपकार कार्यों में चला जाता है। लेकिन वह व्यवस्था जो इस तरह की विसंगति पैदा करती है सिरे से खारिज होनी चाहिए। वाइसराय के वेतन के सम्बंध में जो बात है वह आमतौर से पूरे प्रशासन की वास्तविकता है। इसलिए राजस्व में आत्यन्तिक कमी प्रशासन के खर्च में उसी तरह की कमी पर निर्भर करती है। इस का मतलब है सरकार की व्यवस्था का रूपान्तरण। बिना स्वतंत्रता के यह रूपान्तरण असम्भव है। इसलिए मेरे विचार से 26 जनवरी का प्रदर्शन जिसमें लाखों ग्रामीणों ने स्वाभाविक रूप से भाग लिया वह स्वतः स्फूर्त था। उनके लिए स्वतंत्रता का अर्थ इस जानमारू बोझ से मुक्ति है।

मुझे ऐसा लगता है कि वैचारिक रूप से सर्वसम्मत विरोध के बावजूद ब्रिटेन के बड़े राजनीतिक दलों में एक भी भारत की लूट को, जिसका उपभोग ब्रिटेन प्रतिदिन करता है, छोड़ने के लिए तैयार नहीं है।

फिर भी, यदि भारत को एक राष्ट्र के रूप में जीवित रहना है और उसके वासियों को भूख से घुट–घुट कर मरने से रोकना है, तो तात्कालिक राहत के लिए कुछ उपाय ढूँढ़ना होगा। निश्चित तौर पर प्रस्तावित कान्फ्रेंस इसका समाधान नहीं है। यह बात ऐसी नहीं है कि दलील के बल पर विश्वास पैदा हो। यह बात तो जोर आजमाइशी का है। विश्वास हो या नहीं, हर उपलब्ध बल का इस्तेमाल कर ग्रेट ब्रिटेन भारतीय व्यापार और अपने अन्य हितों की रक्षा करेगा। फलस्वरूप मौत को गले लगाने से बचने के लिए भारत को उपयुक्त शक्ति पैदा करना होगा।

समान उद्देश्य के लिए हिंसक दल की गतिविधि फैल रही है और अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है, भले ही यह असंगठित है और फिलहाल नगण्य है। इसका लक्ष्य वही है जो मेरा है। लेकिन मुझे पक्का विश्वास है कि यह करोड़ों मूक भारतीयों को वांछित राहत नहीं दिला सकता। और यह विश्वास मुझमें गहरा से गहरा होता जा रहा है कि शुद्ध अहिंसा के अलावा कुछ भी ब्रिटिश सरकार की संगठित हिंसा को नहीं रोक सकता है। बहुत लोग सोचते हैं कि अहिंसा क्रियात्मक शक्ति नहीं है। मेरा अनुभव, यद्यपि यह निश्चित रूप से सीमित है, बतलाता है कि अहिंसा एक निहायत क्रियात्मक शक्ति हो सकती है। मेरा उद्देश्य है कि उस शक्ति को जिस तरह ब्रिटिश शासन की संगठित हिंसक शक्ति के विरूद्ध लगाया जाय उसी तरह बढ़ते हुए हिंसक दल की असंगठित हिंसक शक्ति के विरूद्ध भी लगाया जाय। निष्क्रिय हो कर बैठने से उपर्युक्त इन दोनों शक्तियों को बढ़ावा मिलेगा। मेरी दृष्टि में जो अहिंसा है उसमें निर्विवाद और अटल आस्था रखते हुए अब और प्रतीक्षा करना मेरे लिए पाप होगा।

यह अहिंसा सविनय अवज्ञा के रूप में अभिव्यक्त होगी जो अभी तो सत्याग्रह आश्रम के निवासियों तक सीमित रहेगी लेकिन ऐसी योजना है कि बाद में स्पष्ट सीमितताओं वाले इस आंदोलन में स्वेच्छा से जो भी भाग लेना चाहेंगे, ले सकेंगे। मैं जानता हूँ कि अहिंसा के रास्ते पर चलने पर मैं एक जोखिम उठा रहा हूँ जिसे उचित रूप से पागलपन का जोखिम कहा जा सकता है। लेकिन सत्य की विजय बिना जोखिम, अक्सरहाँ भीषण प्रकृति का जोखिम, लिए कभी भी प्राप्त नहीं की जा सकी है। एक राष्ट्र, जिसने सचेतन या

अचेतन रूप से एक ऐसे राष्ट्र का शिकार किया है जो उससे कहीं ज्यादा आबादी वाला है, कहीं ज्यादा प्राचीन है और अपने से कम संस्कार सम्पन्न नहीं है, के हृदय परिवर्त्तन के लिए कोई भी जोखिम उठाया जाना उपयुक्त है।

मैंने सोच समझकर 'हृदय परिवर्त्तन' शब्द का उपयोग किया है। क्योंकि मेरी महत्त्वाकांक्षा इससे कम नहीं है कि अहिंसा के द्वारा मैं ब्रिटिश जनता का हृदय परिवर्त्तन करूँ और इस तरह उन्हें दिखलाऊँ कि उन्होंने भारत के साथ कितना गलत किया है। मैं आपके लोगों का कोई नुकसान नहीं करना चाहता। जिस तरह मैं अपने देशवासियों की सेवा करना चाहता हूँ, उसी तरह उनकी भी सेवा करना चाहता हूँ। मेरा विश्वास है कि मैंने हमेशा उनकी सेवा की है। 1919 तक मैंने उनकी आँख मूँद कर सेवा की। लेकिन जब मेरी आँख खुली और मेरे मन में असहयोग के विचार का जन्म हुआ तब भी मेरा उद्देश्य उनकी सेवा करना ही है। मैंने वही शस्त्र अख्तियार किया जिसे मैं पूरी विनम्रतापूर्वक अपने परिवार के प्रियतम सदस्यों के विरुद्ध सफलतापूर्वक अख्तियार किया है। अगर मेरा प्यार आपके लोगों के प्रति और अपने लोगों के प्रति समान है तो यह ज्यादा समय तक छुपा नहीं रह सकता। जैसा मेरे परिवार के सदस्य ने कई सालों तक मेरी परीक्षा लेने के बाद मेरे प्यार को कबूला उसी तरह वे लोग भी इसे कबूल करेंगे। यदि लोग मेरा साथ देते हैं, जैसा मैं अपेक्षा करता हूँ कि वे देंगे, तो उनके द्वारा झेली जाने वाली पीड़ा पत्थर दिल को भी पिघलाने के लिए पर्याप्त होगी बशर्ते कि ब्रिटेन उसके पहले अपने कदम वापस न ले ले।

सविनय अवज्ञा की योजना वैसी बुराइयों का प्रतीकार करना, जिन बुराइयों को मैंने उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत किया है, होगी। यदि हम ब्रिटेन से अपना संबंध तोड़ना चाहते हैं तो वह इन्हीं बुराइयों के चलते है। जब ये हट जायेंगी तो रास्ता आसान हो जायेगा। तब मैत्रीपूर्ण वार्त्ता का रास्ता खुल जायेगा। यदि भारत के साथ ब्रिटेन का व्यापार लोभ से मुक्त हो जायेगा तो आपको हमारी स्वतंत्रता को मानने में कोई कठिनाई नहीं होगी। अतः इन बुराइयों को तत्काल दूर करने का रास्ता सुगम करने के लिए और इस तरह बराबर के लोगों के बीच सार्थक सम्मेलन, जिसकी दिलचस्पी सिर्फ स्वैच्छिक सहभागिता द्वारा मानव जाति की आम भलाई को बढ़ावा देने और पारस्परिक सहायता और व्यापार, जो दोनों के लिए बराबर अनुकूल हो, के लिए शर्तों का निर्धारण करने में होगी, का रास्ता खोलने के लिए मैं आपको सादर आमंत्रित करता हूँ। आपने अनावश्यक रूप से साम्प्रदायिक समस्याओं पर, दुर्भाग्यवश देश जिससे ग्रस्त है, जोर दिया है। यद्यपि किसी भी सरकारी योजना पर विचार के लिए ये समस्याएं निस्संदेह महत्त्वपूर्ण है, लेकिन उनकी प्राथमिकता देश की बड़ी समस्याओं, जो सम्प्रदायों से ऊपर हैं और सभी सम्प्रदायों को समान ढंग से प्रभावित करती हैं, के लिए नगण्य है। लेकिन यदि आप इन बुराइयों का समाधान करने के लिए कोई उपाय नहीं देख रहे हैं और मेरा पत्र आपके हृदय को नहीं अपील करता है तो इस महीने की 11 तारीख को मैं अपने आश्रम के उन सहकर्मियों के साथ जिन्हें मैं ले सकता हूँ नमक कानून के प्रावधानों की अवहेलना करने हेतु निकल पड़ूँगा। एक गरीब आदमी के दृष्टिकोण में नमक कानून को मैं सबसे ज्यादा साम्यहीन मानता हूँ। चूँकि यह स्वतंत्रता आंदोलन मूल रूप से इस देश के निर्धनतम लोगों के लिए है, इसकी शुरुआत इसी बुराई के विरुद्ध होगी। आश्चर्य है कि हमलोगों ने इतनी लम्बी अवधि तक इस क्रूर एकाधिपत्य को बर्दाश्त किया है। मैं जानता हूँ कि मुझे गिरतार कर आप चाहें तो मेरी योजना को विफल कर देंगे। मेरी आशा है कि हजारों हजार लोग मेरे बाद इस काम को अनुशासित ढ़ंग से करने के लिए तैयार रहेंगे और नमक कानून की अवहेलना करने में जो दंड होंगे उन्हें भोगने के लिए आगे रहेंगे लेकिन कानून की किताब को इस कानून से विकृत नहीं होने देंगे।

मैं नहीं चाहता कि आपको कोई अनावश्यक परेशानी हो या जहाँ तक मैं कर सकता हूँ, आपको कोई परेशानी हो। यदि आप सोचते हैं कि मेरे पत्र में कोई दम है और आप मुझसे इन बातों पर विचार–विमर्श करना चाहेंगे और उस उद्देश्य से आप चाहेंगे कि इस पत्र का प्रकाशन स्थगित कर दिया जाय तो इस पत्र मिलने के तुरंत बाद आप से इस आशय का टेलीग्राम मिलने पर मैं सहर्ष ऐसा करने से परहेज करूँगा। लेकिन जब तक आप इस पत्र की सारभूत बातों से सहमत होने का कोई रास्ता नहीं देख लेते, आप कृपा कर मुझे मेरे पथ से विचलित नहीं करें। इस पत्र का उद्देश्य किसी भी तरह आपको कोई धमकी देना नहीं है, बल्कि यह एक सविनय प्रतिरोधी का साधारण, पवित्र और अनिवार्य कर्त्तव्य है। इसीलिए मैं यह पत्र अपने एक युवा अंग्रेज मित्र, जिसे भारत के उद्देश्य और अहिंसा में पूर्ण विश्वास है तथा मुझे लगता है कि जैसे ईश्वर ने उसको मेरे पास इसी उद्देश्य से भेजा है, के माध्यम से आप तक पहुँचा रहा हूँ।

आप का सच्चा दोस्त

(मोहन दास करमचंद गाँधी)

(मूल अंग्रेजी का हिन्दी अनुवाद : सम्पादक)

हमारा संविधान, हमारा लोकतंत्र

उपलब्धियाँ, चुनौतियाँ और अपेक्षाएँ

डॉ. सुभाष कश्यप

(यह आलेख भारतीय संविधान के जाने–माने विशेषज्ञ डॉ. सुभाष कश्यप द्वारा बिहार उद्योग संघ द्वारा 24 दिसम्बर 2014 को पटना में आयोजित देशरत्न डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मेमोरियल व्याख्यान माला के अन्तर्गत दिये गए अभिभाषण पर पूर्णतः आधारित है।)

मैं जब भी यहाँ (पटना) आता हूँ विश्व के प्राचीनतम लोकतंत्रात्मक गणराज्यों की जन्मस्थली का वन्दन करता हूँ। वैशाली, लिच्छवी, मगध, अवंती, अंग और मल्ल संघ जैसे गणराज्यों और नालन्दा जैसे विश्वविद्यालयों की मनोरम माटी पूजनीय है। भारत का यह भूभाग हजारों वर्ष तक राष्ट्र के हृदय का स्पन्दन रहा है, सभ्यता, संस्कृति, शिक्षा, कला और सत्ता का केन्द्र रहा है, अशोक, चन्द्रगुप्त, याज्ञवल्क्य, पतंजली, कौटिल्य, मण्डन मिश्र, मैत्रेयी, गौतम, भारती, गुरु नानक, सच्चिदानन्द सिन्हा, देशरत्न डॉ. राजन्द्र प्रसाद, लोकनायक जयप्रकाश नारायण, बाबू जगजीवन राम जैसे महान व्यक्तित्वों की कर्मस्थली रहा है, राष्ट्र की चेतना और अस्मिता का संवाहक रहा है। यहाँ बहुत कुछ है जिस पर आप और हम सब गर्व कर सकते हैं।

आज मुझे देशरत्न राजेन्द्र बाबू की स्मृति को अपने श्रद्धा सुमन प्रस्तुत करने का सुवसर मिल रहा है। यह मेरा सौभाग्य रहा है कि मैंने देश के प्रथम राष्ट्रपति और संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद को कुछ निकट से देखा था। वे विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। प्रकाण्ड विद्वान, विचारक, विधिवेत्ता और अत्यंत सफल अधिवक्ता थे। बहुत ही सादा जीवन जीने वाले और धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने देश के स्वाधीनता संघर्ष में प्रमुख भूमिका निभाई, त्याग किए और जेल जीवन की यातनाएं सहीं। वे चार बार कांग्रेस के अध्यक्ष बने। अन्तरिम सरकार में खाद्य और कृषि मंत्री रहे। 1946 से 1950 तक संविधान सभा के अध्यक्ष और 1950 से 1962 तक भारत के राष्ट्रपति रहे। संविधान सभा में वह कई प्रमुख समितियों के सभापति भी रहे। राष्ट्रपति पद से अवकाश लेने के बाद डॉ. राजेन्द्र प्रसाद यहाँ वापस आ गये और सदाकत आश्रम में साधारण नागरिक की तरह सादा जीवन जीया। मैं समझता हूँ नई पीढ़ियों के लिए आदर्श जीवन की उनसे अच्छी कोई मिसाल नहीं मिल सकती।

मेरा मानना रहा है कि स्वाधीनता के बाद, हमारी सबसे बड़ी उपलब्धि हमारा संविधान ही है।

हमारे संविधान के नागरिकों के मूल कर्त्तव्यों संबंधी भाग 4 (क) के अनुसार प्रत्येक नागरिक का सबसे पहला कर्त्तव्य है : ''संविधान का अनुसरण करना और उसके आदर्शों और संस्थाओं का आदर करना''। संविधान को जाने बिना यह सम्भव नहीं क्योंकि संविधान ही हमें

बताता है कि हम किस प्रकार, किस व्यवस्था के अर्न्तगत शासित हो रहे हैं, राज्य के प्रमुख अंगों – विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका – के दायित्व, शक्तियाँ, सीमाएं और अन्तर्संबंध क्या हैं।

संविधान के जनकों ने सपना संजोया था कि लोकतंत्र से सत्ता जनता के हाथों में आयेगी; सामाजिक–आर्थिक क्रान्ति आयेगी; ऊँच–नीच का भेदभाव समाप्त होगा; गरीबी, अशिक्षा और भुखमरी का अन्त होगा; भारत एक सशक्त, अखण्ड राष्ट्र के रूप में पुनर्जागृत होगा। एक नया विहान आयेगा। 15 अगस्त 1947 को स्वाधीनता के पहले दिन, संविधान सभा के अध्यक्ष पद से राष्ट्र का आह्वान करते हुए डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था;

''आइये, इस देश में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करने का संकल्प करें – जब प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र होगा और अपनी प्रतिभा के पूरे विकास के तथा अपनी पूरी सामर्थ्य तक ऊँचा उठने के साधन उपलब्ध होंगे, जब गरीबी और गन्दगी, अज्ञान और बीमारी दूर हो गई होगी, जब ऊंच और नीच के बीच, गरीब और अमीर के बीच का भेद मिट गया होगा, जब न केवल धर्म के विश्वास, प्रतिपादन और व्यवहार की पूरी स्वतन्त्रता होगी, बल्कि धर्म ऐसी संयोजक शक्ति बन जायेगा जो अशान्ति और विच्छेद, विभाजन और अलगाव पैदा करने के बजाये मनुष्य को मनुष्य के साथ जोड़े, जब मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त हो जाएगा, जब भारत की आदिमजातियों को, तथा उन सबको जो पिछड़े हुये हैं और सबको बराबरी में लाने के लिए विशेष सुविधाओं का आयोजन किया जायेगा, जब इस देश में न केवल करोड़ों भारतीयों का पेट भरने के लिए पर्याप्त अन्न होने लगेगा, बल्कि एक बार फिर दूध की नदियाँ बहने लगेंगी, जब देश के नर–नारी खेतों और कारखानों में हँसते–हँसते काम किया करेंगे, जब हर झोंपड़े और पट्टी में घरेलू धन्धों का मधुर संगीत गूँजता होगा और साथ–साथ युवतियाँ अपने मीठे सुर अलापती होंगी, जब सूरज और चन्द्रमा इस देश के सुखी घरों और हँसते हुये चेहरों पर चमकेंगे।''

हम सब जानते हैं कि डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सपने पूरे नहीं हुए। जो संविधान बना और जिस प्रकार उसे चलाया गया वह उनकी संकल्पना के संविधान से कोसों दूर था।

फिर भी, यह कोई मामूली बात नहीं थी कि विभिन्न प्रकार से विखंडित और विभाजित समाज को एक सूत्र में पिरोया जा सका और एक ऐसे संविधान का निर्माण हो सका जो सर्वमान्य हो, देश के एक छोर से दूसरे छोर तक लागू हो और आज 65 वर्ष बाद 98 संशोधनों के बावजूद भी अक्षुण्ण रहा हो। यह उपलब्धि और भी महत्वपूर्ण लगती है जब हम देखते हैं कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद बने अन्य अनेक देशों के संविधान लुप्त हो गये। हमारा देश अनेक बाहरी और भीतरी समस्याओं तथा चुनौतियों का सामना संविधान के अन्दर रहते हुए कर सका। हमें पाँच बार अपने पड़ोसी पाकिस्तान और चीन के आक्रमणों का मुकाबला करना पड़ा। आंतरिक क्षेत्र में भी इस बीच देश के सामने कितनी ही प्राकृतिक विपदाएं और एक के बाद एक राजनैतिक और सामाजिक संकट आये। इन सबका निदान संविधान के दायरे में ही खोजा गया। संविधान के अधीन लोकसभा के लिए अब तक 16 और राज्यों की विधानसभाओं के लिए कई सौ आम चुनाव हो चुके हैं जिन्हें विश्व भर में प्रायः पूर्णतया स्वतंत्र और स्वच्छ माना गया और हर बार सत्ता परिवर्तन नितान्त शान्तिपूर्ण रहा। संक्षेप में कह सकते हैं देश में सांविधानिक शासन कायम रहा। देश की अखण्डता और एकता सुरक्षित रही, व्यक्ति की स्वतंत्रता और गरिमा बनी रही, संसदीय लोकतंत्र अटूट रहा और समाचार माध्यम स्वतंत्र रहे। 2014 में आम चुनावों में हमारी आँखों के सामने जो हुआ वह एक नितान्त शान्तिपूर्ण, सांविधानिक लोकतांत्रिक क्रांति से कुछ

कम नहीं है। मतदाताओं ने एक बार फिर सिद्ध कर दिया कि सत्ताधारी कितने ही शक्तिशाली क्यों न हों उन्हें अपदस्थ किया जा सकता है। हमारा संविधान और लोकतंत्र इस पर गर्व कर सकते हैं। किन्तु अगर 2014 के आम चुनावों से पहले दस वर्षों पर हम नजर डालें तो कुछ अच्छी तस्वीर नहीं उभरती। जो कुछ हुआ वह लोकतंत्र को शर्मसार करने के लिए पर्याप्त था। भुखमरी, बेरोजगारी, कमरतोड़ महंगाई, गुण्डाराज और भयंकर भ्रष्टाचार से जनता त्रस्त हो गई जबकि उसके तथाकथित जनसेवक नेता और प्रतिनिधि सांसद, विधायक और मन्त्री बनकर ऐशो–आराम की जिन्दगी बिताते रहे और करोड़ों के काले धन में खेलते रहे। लोकतंत्र लूटतंत्र बन गया। राजनीतिक भ्रष्टाचार और लूट–खसोट की होड़ में नेताओं ने काले धन से अपनी तिजोरियाँ भरीं विदेशों में भारी रकमें जमा की, घोटाले पर घोटाले किए। हम विनाश के कगार पर खड़े दिखायी दिये। हमारे देश की गणना संसार के भ्रष्टतम राष्ट्रों में होने लगी। संविधान और लोकतंत्र लागू होने के 64 वर्ष बाद, गरीबों और निरक्षरों की संख्या गुलाम भारत में उनकी संख्या से कहीं अधिक और दुनिया के और किसी भी देश से अधिक है। लगता है विशाल जन समूहों को पिछड़ा और बेपढ़ा–लिखा रखने में नेताओं का निहित स्वार्थ था।

गांधी का कहना था कि उनके लिए स्वाधीनता का अर्थ होगा प्रत्येक गाँव में, प्रत्येक व्यक्ति को पीने योग्य पानी उपलब्ध होना किन्तु स्वाधीनता के 67 वर्ष बाद, देश में लगभग एक लाख गाँव ऐसे हैं जिनमें आम आदमी को पीने योग्य पानी उपलब्ध नहीं है अथवा महिलाओं को मीलों दूर से सिरों पर ढोकर पानी लाना होता है। जानवर और आम आदमी एक ही तालाब या जोहड़ के पानी में नहाते–धोते हैं। लोकतंत्र के लिए सबसे अधिक हताशा की बात है जनता का अपने चुने हुए प्रतिनिधियों पर से ही विश्वास उठ जाना और आम लोगों और नेताओं के बीच खाई बहुत चौड़ी हो जाना। चुनाव जीतने के लिए वोट बैंक पॉलिटिक्स करने और सरकार बनाने और चलाने के लिए किसी भी प्रकार लोकसभा में आवश्यक गिनती का समर्थन जुटाना मात्र लोकतंत्र रह गया है। मोहम्मद इकबाल ने कभी कहा थाः–

जम्हूरियत वह तर्जे हुकुमत है,
जिसमें बन्दों को गिना करते हैं,
तौला नहीं करते।

इतिहास गवाह रहेगा किस प्रकार व्यापक रूप में सभी लोकतंत्रात्मक संस्थाओं का गैर संस्थानीकरण और सभी उदात्त मूल्यों का अवमूल्यन हुआ। प्रतिनिधि संसदीय संस्थाएं निष्क्रिय और निष्प्रभावी लगने लगीं। लोकतंत्र की परिभाषा बदल गई – जनता की, जनता के द्वारा, जनता के लिए शासन न होकर, वह भ्रष्ट लोगों का, भ्रष्ट लोगों के द्वारा, भ्रष्ट लोगों के लिए हो गया।

मुझे याद आता है, डॉ. अम्बेदकर ने संविधान सभा में कहा था : समय बदल रहा है, लोग जनता की सरकारों से उकता रहे हैं, वे चाहते हैं ऐसी सरकार जो जनता के लिए हो, भले ही जनता द्वारा चुनी हुई न हो।

ताजा सत्ता परिवर्तन से पहले वर्षों के कुशासन में अनगिनत भयंकर घोटालों ने नेतृत्व के प्रति जनमन की आस्था पर ही चोट नहीं की अपितु लोकतंत्र के और सुशासन के स्तम्भों को भी हिला दिया। सत्ता में बैठे राजनेताओं के प्रति ही नहीं, लोकतांत्रिक व्यवस्था के प्रति आदर मिटने लगा – **ख्वाब में भी न सोचा था हमने कभी, यह आलम भी चमन पे गुजर जायेगा; बागवाँ छीन लेंगे लिबासे बहार, और फूलों का चेहरा उतर जायेगा।**

इतिहास गवाह रहेगा किस प्रकार व्यापक रूप में सभी लोकतंत्रात्मक संस्थाओं का गैर संस्थानीकरण और सभी उदात्त मूल्यों का अवमूल्यन हुआ। प्रतिनिधि संसदीय संस्थाएं निष्क्रिय और निष्प्रभावी लगने लगीं। लोकतंत्र की परिभाषा बदल गई – जनता की, जनता के द्वारा, जनता के लिए शासन न होकर, वह भ्रष्ट लोगों का, भ्रष्ट लोगों के द्वारा, भ्रष्ट लोगों के लिए हो गया।

राजनेताओं और राजनीतिक दलों के प्रवक्ताओं के बीच वाद–विवादों में यह देखकर हैरत होती थी कि अपने अपराधों और भ्रष्टाचार के आरोपों पर सफाई देने के बजाय वह यह कहते नजर आते थे कि दूसरे भी तो वैसे ही अपराधों और भ्रष्टाचारों के दोषी थे। ऐसे में स्वाभाविक था कि सड़कों पर आम आदमी भी राजनीतिक और प्रशासनिक लूटतंत्र से अपने को प्रताड़ित और त्रस्त अनुभव करे और हमें सड़कों ओर कूचों में सुनने को मिले –

लूट मची है लूट,
जितना लूट सके तू लूट,
फिर पछतायेगा,
जब कुर्सी जायेगी छूट।

लगभग 20 वर्षों तक ऐसी सरकारें बनीं ओर चलीं जिनका आधार था पैसे से, मंत्री पदों से अथवा विरोधियों पर लम्बित आपराधिक मुकदमें न चलाने के वायदों से, समर्थन खरीदना। सरकार विरोधियों को आपराधिक मुकदमों का हौवा दिखाकर डराती थीं और विरोधी अपना समर्थन वापस लेने की धमकी देकर सरकार को डराते रहते थे। इस प्रकार "it became a game of mutual brinkmanship, bluff and blackmail." यों ही तथाकथित साझी सरकार अथवा बाहर से समर्थित सरकारें बनती चलती रहीं। समर्थन बेचे और खरीदे जाते रहे, आपराधिक छवि के लोग सत्ता में अधिकाधिक भागीदारी पाते रहे और बिक्री के लिए उपलब्ध विधायकों की संख्या और एक–एक अदद की कीमत बढ़ती गई। गलियों में लोग कहते सुने जाने लगेः–

समय–समय की बात है,
समय–समय का योग;
करोड़ों में बिकने लगे,
दो दो कौड़ी के लोग।

16वें आम चुनावों से पहले एक विश्वविद्यालय की विशाल सभा में बोलते हुए मैंने कहा था कि सम्भवतः गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस में ऐसी ही दशा के बारे में भविष्यवाणी की थी :

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी,
सो नृपु अवसि नरक अधिकारी।
जिनहि अनीति करत डर नाहीं,
सो जइहैं, थोड़े दिन माहीं।।

सचमुच कुछ दिनों में भारत की राजनीति का नक्शा बदल गया। चुनावों के नतीजे आते ही सारा माहौल बदल गया। राजनीतिक दलोंकी दलदल से निकल कर, संविधान और लोकतंत्र के विद्यार्थी और एक नागरिक के नाते देखें तो अच्छा लगेगा कि कई दशकों बाद, एक दल और एक नेता को स्पष्ट बहुमत और निर्णायक जनादेश मिला। एक सशक्त और स्थिर सरकार बनी जो राष्ट्र को एक कुशल, स्वच्छ, जन–सुहृद, विकासोन्मुख और भ्रष्टाचार–मुक्त सुशासन देने की क्षमता रखती थी। संविधान के दायरे के अन्दर सरकार कोई भी निर्णय ले सकती थी और उसे लागू कर सकती थी। उसके सामने गठबंधन की राजनीति की विवशताएं नहीं थीं, समर्थक दलों द्वारा अनुचित माँगों, शर्तों और ब्लैकमेल किए जाने की समस्याएं भी बहाना नहीं बन सकती थीं।

सच यह है कि 16वां आम चुनाव अब तक का सबसे अधिक महंगा चुनाव था। बेतहाशा धनराशि खर्च हुई। अवश्य ही उसमें अधिकांश धन काला धन या विदेशों से आया हो या स्वदेश से। ऐसी स्थिति में कालेधन से कैसे लड़ा जायेगा। यह भी कोई गंभीरता पूर्वक दावा नहीं कर सकता कि चुनावों में बाहुबल, धनबल, माफिया का वर्चस्व समाप्त हो गया, पार्टी टिकट और मतदाताओं के वोट बिकने बन्द हो गये या वोट बैंकों की राजनीति कमजोर पड़ गई। संसद में आपराधिक पृष्ठभूमि के लोगों की संख्या बढ़ी है, करोड़पतियों का समूह भी बढ़ा है। वर्तमान निर्वाचन व्यवस्था के चलते, लोकसभा और विधान सभाओं के लिये चुने गये सदस्यों में विशाल बहुमत उनका है जिनके विरोध में अधिक मत पड़े और जिनके प्रतिनिधिक चरित्र पर सन्देह चिह्न हैं। प्रभावी लोकपाल अभी जन्मा नहीं है। भ्रष्टाचार लगभग ज्यों का त्यों कायम है। कालाधन विदेशी खातों से भारत लौटता दिखाई नहीं दे रहा। समस्याएं अनेक हैं, बहुत कुछ होना जरूरी है। जनता कठिनाइयों को समझती है और ठोस बदलाव के लिए कुछ प्रतीक्षा करने को तैयार है। किन्तु, वर्तमान सरकार केवल परिवर्तन और विकास के वायदों पर सत्ता में आई। भले ही पहली सरकारों को जनता ने 50–60 सालों तक झेला हो, वर्तमान सरकार को जनता 5 या 10 वर्ष कभी नहीं देगी। जन मन बदलाव के लिये बेताब है, बेचैन है। व्यवस्था में अविलम्ब सुधार होता देखना चाहती हैं। जो हुआ और हो रहा है कदापि पर्याप्त नहीं है। केवल इतना हुआ है कि नैराश्य का स्थान आशा ने ले लिया है और अभी भी उम्मीदें जिन्दा है किन्तु, अधिक कुछ बदला नहीं है। औपनिवेशिक व्यवस्था ज्यों की त्यों कायम है और नौकरशाही अभी भी शक्तिशाली है। सभी दलों के भीतर सुधार न आने देने में निहित स्वार्थ हैं। अच्छा हो हम अपने को धोखा न दें और मानें कि संविधान के कार्यकरण और हमारे लोकतंत्र के सामने कितनी ही गंभीर चुनौतियाँ हैं। बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता का तकाजा है कि हम चुनौतियों को सुअवसरों में बदल दें और समझ लें कि सफल होने के अलावा और कोई विकल्प हमारे लिये है ही नहीं क्योंकि 16वें चुनाव जैसे चमत्कार रोज–रोज नहीं होते और अगर हम इस बार असफल हो जाते हैं तो सरकार और भाजपा के लिए ही नहीं अपितु स्वाधीनता और लोकतंत्र के लिए, भ्रष्टाचार मुक्त सुशासन के लिए परिणाम भयंकर होंगे, भयावह होंगे।

(लेखक भारतीय लोकसभा के महासचिव रह चुके हैं तथा सम्प्रति नई दिल्ली स्थित सेंटर फॉर पॉलिस रिसर्च में मानद प्रोफेसर हैं)

भारत की गरीबी का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

प्रो. भारती एस. कुमार

(लेखक पटना विश्वविद्यालय में इतिहास की प्रोफेसर, स्नातकोत्तर इतिहास की अध्यक्ष तथा समाज विज्ञान संकाय की अध्यक्ष रहीं हैं। विश्वविद्यालय सेवा से अवकाश प्राप्ति के पश्चात् भी शैक्षिक और सामाजिक कार्यों में सक्रिय हैं)

18वीं सदी से पहले चीन और भारत सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाएँ थीं। औपनिवेशिक भारत में ब्रिटिश शासकों ने भारत के आर्थिक संसाधनों का शोषण किया, यहाँ के कारीगरों और किसानों को आर्थिक लाभ कमाने से वंचित किया और भारत को ब्रिटिश उत्पादित माल का बाजार बना दिया। मुगलकाल में व्यापार का जो संतुलन भारत के हक में था तथा भारतीय अर्थव्यवस्था जिस उन्नत स्थिति में थी, औपनिवेशिक भारत में पतनोन्मुख हो गई। मुगलकाल में विश्व अर्थव्यवस्था में भारत की भागीदारी लगभग 25 प्रतिशत थी, वह अब घटकर मात्र 4 प्रतिशत रह गई है। इस काल में भारतीय किसानों की त्रासदी दीनबन्धु मिश्र के 'नीलदर्पण' और प्रेमचन्द के 'गोदान' में देखी जा सकती है। ब्रिटिश अर्थशास्त्री एन्गास मेडिसन का कहना है कि 1700 ई. में भारत का विश्व की आय में जो हिस्सा 27 प्रतिशत था वह 1950 ई. में घटकर केवल 3 प्रतिशत रह गया। उनके अनुसार इसका मुख्य कारण औपनिवेशिक शासन था। उपनिवेश होने के कारण भारतीय उद्योग धंधों में निवेश सीमित था।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद के भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव के संबंध में पूर्ववर्ती और अद्यतन इतिहासकारों में मतैक्य नहीं है। 1780 ई. के ब्रिटिश राजनीतिज्ञ एडमन्ड बरके ने वारेन हेस्टिंग्स और अन्य शीर्ष पदाधिकारियों को भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था को तबाह करने के लिए जिम्मेदार ठहराया है। भारतीय इतिहासकार रजत कान्त रे ने इसी तर्क को आगे बढ़ाते हुए कहा कि भारत में अंग्रेजो द्वारा 18वीं सदी में लाई गई अर्थव्यवस्था लूट का रूप थी और मुगलकालीन भारत की परम्परागत अर्थव्यवस्था के लिए तबाही का कारण बनी। इनके अनुसार अंग्रेजों ने खाद्य और मुद्रा के स्टॉक खाली कर दिए और भारी कर (Tax) लगाये। फलस्वरूप देश को अकाल की त्रासदी झेलनी पड़ी। बंगाल में तो वहां की एक तिहाई आबादी अकाल में शहीद हो गई।

भारत में गरीबी के दो सबसे महत्वपूर्ण कारण हैं – एक, उपनिवेश काल में भारत की अप्रतिम लूट और दो, उन्हीं जैसी कुछ नीतियों को स्वतंत्रता के बाद भी जारी रखना। भारत कृषि–प्रधान देश के साथ एक आत्म निर्भर औद्योगिक देश भी था। इस संदर्भ

में ब्रिटिश इतिहासकार मांटेगुमरी मार्टिन के ब्रिटिश संसद की जाँच समिति के सामने दिया गया यह वक्तव्य बहुत सटीक है कि भारत जितना खेती वाला देश है उतना ही औद्योगिक उत्पादन का। उसे कृषि प्रधान देश में बदल देना उसकी सभ्यता के स्तर को नीचे ले जाना होगा। वास्तव में भारत की लूट ने भारत के मूल्य पर ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति को जन्म दिया। अमरीकी इतिहासकार ब्रुक एडम्स ने अपनी पुस्तक 'दि लॉ ऑफ सिविलाइजेशन एण्ड डिकेय' में लिखा है, प्लासी के युद्ध (1757) के बाद ही बंगाल की लूट आरंभ हो गई थी। सभी विद्वान मानते हैं कि ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति की शुरुआत सन् 1770 ई. में हुई थी। उसके बाद अगले बीस वर्षों में इंगलैंड में हुए यांत्रिक आविष्कारों का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं कि लगातार बढ़ती हुई भारी लागत के बिना इन अविष्कारों का कुछ महत्व नहीं था। भारत की लूट और उसके कारण बढ़ी हुई उधार प्राप्ति की क्षमता के बिना कोई अन्य शक्ति उन्हें गति नहीं दे सकती थी। जब से दुनिया आरंभ हुई है, किसी भी निवेश से इतनी कमाई नहीं हुई है जितनी की भारत की लूट से। पचास वर्षों तक ब्रिटेन किसी प्रतिद्वंदी की चुनौती के बिना उस आधार पर आगे बढ़ता रहा।

'भारत की खोज' में पंडित जवाहर लाल नेहरू की टिप्पणी भी यहां प्रासंगिक है, यूरोप के औद्योगीकरण की कीमत भारत और चीन जैसे देशों को चुकानी पड़ी है। उन्होंने शुरुआत की याद दिलाते हुए बताया कि प्लासी के युद्ध के तेरह वर्ष बाद ही बंगाल में अकाल पड़ गया। बंगाल, उड़ीसा और बिहार की वर्त्तमान बदहाली का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा कि जिन इलाकों पर अंग्रेजी राज जितना लम्बा चला उतनी ही उनकी बदहाली बढ़ी। ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत के शिल्प–हथकरघे, धातु प्रक्रियाकरण, काँच, लकड़ी के सामान के उत्पादन, नौका और सागर–यान के निर्माण को योजनाबद्ध तरीकों से जबरदस्ती खत्म किया। कंपनी ने ब्रिटेन की संसद से कानून बनवाकर भारत के औद्योगिक उत्पादन का ब्रिटेन में आयात बंद करवा दिया।

महात्मा गाँधी, जिनकी भारत की गरीबी पर एक मौलिक समझ थी, के अनुसार भारत की सबसे बड़ी समस्या लाखों गाँवों में फैले करोड़ों लोगों को गरीबी से मुक्ति दिलाने की है। उनके अनुसार गरीबी के मूलतः छह कारण थे – औपनिवेशिक व्यवस्था, मध्यवर्ग की उपभोग प्रवृति, हृदयहीन शोषण, अज्ञानता, बेकारी तथा गरीबों की चुपचाप सहने की आदत।

फलतः भारत केवल कच्चे माल का निर्यातक बन गया, साथ ही ब्रिटिश निर्मित माल की खपत की विशाल मंडी भी बन गया। इन नीतियों का परिणाम यह हुआ कि लाखों शिल्पकार और कारीगरों के धंधें उजड़ गये और वे बाध्य होकर गाँवों से पलायन करने लगे। लॉर्ड विलियम बेंटिक के मुताबिक, भारत के मैदान उनकी हड्डियों से भर गये। जो बच गये, उनके लिए खेती योग्य भूमि उपलब्ध नहीं थी। जितनी जोतें थीं वे भी बंटकर छोटी होती गईं। कृषि क्षेत्र में लॉर्ड कार्नवालिस के द्वारा 1784 ई. में लागू स्थायी बन्दोबस्ती कानून ने नकारात्मक प्रभाव पैदा किया। इसके फलस्वरूप नया जमींदार वर्ग, जो किसानों को लगान वसूली में किसी भी प्रकार की रियायत नहीं देता था, नये भूपतियों के रूप में विकसित हुआ जो ब्रिटिश हुकूमत का पक्षधर बन गया। लगातार जोर तलब वसूली ने किसानों को खेती से विमुख किया। जिन किसानों की जोतें छोटी होती गईं वे भूमिहीन खेत मजदूर बन गये। खेतों के रख–रखाव में कमी, सिंचाई का अभाव, उँचे ब्याज पर कर्ज और जमींदारों या कंपनी के कारिन्दों के भारी लालच और अत्याचार के फलस्वरूप उत्पादन घटने लगा और अकाल की स्थिति होने लगी। फलस्वरूप भारत के पूर्वी भाग में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में तीन भीषण अकाल पड़े।

तत्कालीन भारत की आर्थिक बदहाली और लूट का विवरण हम रमेश चन्द्र दत्त की 'भारत का आर्थिक इतिहास', दादा भाई नौरोजी की 'ब्रिटिश रूल इन इंडिया', पंडित सुन्दरलाल की 'भारत राज्य के नब्बे वर्ष' और लाला लाजपत राय की 'दुःखी भारत' में पाते हैं। महात्मा गाँधी, जिनकी भारत की गरीबी पर एक मौलिक समझ थी, के अनुसार भारत की सबसे बड़ी समस्या लाखों गाँवों में फैले करोड़ों लोगों को गरीबी से मुक्ति दिलाने की है। उनके अनुसार गरीबी के मूलतः छह कारण थे – औपनिवेशिक व्यवस्था, मध्यवर्ग की उपभोग प्रवृति, हृदयहीन शोषण, अज्ञानता, बेकारी तथा गरीबों की चुपचाप सहने की आदत। बाद में सन् 1935 में उन्होंने 'हरिजन' में एक और कारण चिन्हित किया – हमारे

ग्रामीण कुटीर उद्योगों के खात्मे के बाद फैली बेरोजगारी। गाँधीजी ने अनुभव किया कि उद्योग और हस्तशिल्प लोगों का पेट भरने के लिए पर्याप्त थे, जो ब्रिटिश राज में विलुप्त हो गये, परिणामस्वरूप जो लोग उन पर आश्रित थे अब वे कृषि क्षेत्र में आ गये। पहले 70 प्रतिशत लोग ही भूमि पर आश्रित थे जो बढ़कर 90 प्रतिशत हो गये।

चूंकि भारत में अधिकतर आबादी गाँवों में निवास करती है इसलिए गाँधीजी ने ग्रामीण हस्तशिल्प और कुटीर उद्योग को कृषि के सम्पूरक के रूप में माना। ब्रिटिश राज में गाँव और शहर के बीच का अंतर बहुत अधिक स्पष्ट होकर उभरा। रेल के विकास और शहरों में प्रशासनिक केन्द्रों की स्थापना के कारण शहर बहुत महत्वपूर्ण बन गये। गाँव कच्चे माल के निर्यात के शिकारगाह बन गये। उनकी आर्थिक हैसियत गिरने लगी। विशेष रूप से पूर्वी भारत में स्थायी बंदोबस्ती के कारण बिचौलियों के माध्यम से अधिकाधिक शोषण होने लगा। गाँवों की पारम्परिक पंचायतें निष्क्रिय हो गयीं। छोटे और सीमांत किसानों और बंटाईदारों का शोषण और बढ़ने लगा। निम्नतम जातियाँ अपनी कमजोर हैसियत और विपन्नता के कारण इस स्थिति के खिलाफ आवाज भी नहीं उठा सकीं। गरीबी का सारा बोझ अंततः इन्हीं निम्न गरीब जातियों पर पड़ा। औपनिवेशिक काल में कृषि–आधारित कच्चे माल के मौद्रीकृत बाजार के निरन्तर प्रसार के कारण गरीबी की समस्या अत्यंत विकराल हो गई क्योंकि खाद्यान्न उत्पादन में कमी करके नकद फसलों को बढ़ावा दिया गया।

आजादी के बाद के भारत में उपरोक्त समस्याओं पर नई आजाद सरकार का ध्यान भी केन्द्रित नहीं हुआ। पहली दो पंचवर्षीय योजनाओं में गरीबी उन्मूलन का कोई उल्लेख नहीं था। प्रथम बार तृतीय पंचवर्षीय योजना में ही गरीबी मुद्दा बनी। यह माना गया कि लगभग 30 करोड़ लोग योजना की परिधि के बाहर थे।

एक अध्ययन दल बनाया गया जिसको यह भार दिया गया कि वह गरीबी के परिमाण का पता करे और इसके लिए उपयुक्त विधि विकसित करे। साठ के दशक में दाण्डेकर और रथ का गरीबी संबंधी प्रसिद्ध अध्ययन प्रकाशित हुआ। कालान्तर में गरीबी रेखा की अवधारणा विकसित हुई।

गरीबी के सरकारी आकलनों की शुरुआत सत्तर के दशक से होती है। गरीबी रेखा के निर्धारण के लिए मनुष्य की न्यूनतम कैलोरी जरुरत को आधार बनाया गया, इसके लिए एक ग्रामीण की न्यूनतम कैलोरी आवश्यकता 2400 कैलोरी और शहरी की 2100 कैलोरी आँकी गई। कैलोरी की इस मात्रा को प्रति व्यक्ति मासिक आय में रूपान्तरित कर लिया गया। इससे कम में गुजारा कर रहे लोगों को 'गरीब' की श्रेणी में रखा गया।

इस प्रकार के आकलन में सरकार, विपक्ष एवं बुद्धिजीवियों के बीच अनेकों बहसें छिड़ गई। इसके लिए सबने अपने–अपने मानदण्ड स्थापित किये। कोई 25 प्रतिशत जनता को गरीबी रेखा के नीचे बता रहा है तो कोई 70 प्रतिशत। गरीबी रेखा भी उपर नीचे उठती गिरती रहती है। अभी तक इसे स्थायित्व प्राप्त नहीं हो सका है।

आज 'गरीबी हटाओ' का नारा व्यापक रूप में हवा में तैर रहा है तथा इस पर राजनीति भी हो रही है। केन्द्र और राज्य सरकारों के घोषणापत्रों यानी मेनीफेस्टों में गरीबी हटाओ मुख्य एजेण्डा रहता है। बिहार में भी नीतीश कुमार की सरकार ने गरीबी हटाने को लेकर कई बड़ी–बड़ी गोष्ठियां कीं जिनमें अमर्त्य सेन, मेघनाथ देसाई एवं देश–विदेश के अनेक विचारक, अर्थशास्त्री, इतिहासकार और एक्टीविस्ट शामिल हुए।

हाल ही में मेघनाथ देसाई ने अपने व्याख्यान 'क्या निर्धनता कभी समाप्त होगी?' में निष्कर्ष दिया कि 'गरीबी मिटाने का काम कभी खत्म होने वाला नहीं है। हम कुछ भी कर लें पूरी तरह गरीबी दूर होने वाली नहीं है।' देसाई ने यूँ तो अनेक तर्क दिए परन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण भ्रष्टाचार के मुद्दे की चर्चा नहीं की। भ्रष्टाचार जो आज उपर से नीचे तक व्याप्त है सारी योजनाओं को दीमक की तरह चाट रहा है और विकास के मार्ग में सबसे बड़ा रोड़ा साबित हो रहा है। मनरेगा जैसी रोजगार परक योजना भी कागजी लूट का शिकार बन रही हैं।

खगोलीकरण के इस कारपोरेटी दौर में जब पूँजी मुट्ठी भर लोगों के हाथ में सिमटती जा रही है तो यह उम्मीद करना कि आम आदमी को उसके श्रम का उचित लाभ मिलेगा व्यर्थ है। योजनाएँ बनेंगी, बड़े–बड़े बयान दिये जायेंगे परन्तु अंतिम फैसला आमजन को ही करना होगा – एकजुट होकर शोषण और भ्रष्टाचार के खिलाफ एक अनवरत जन–आंदोलन खड़ा करना होगा।

नंगा राजा

नीरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती

सब लोग देख रहे हैं कि राजा नंगा है,
फिर भी सबके सब चिल्ला रहे हैं शाबाश! शाबाश!
उनमें से कुछ के मनों में है संस्कार, कुछ को डर,
कुछ अपनी बुद्धि गिरवी रखे हैं दूसरों के पास,
कई परजीबी हैं, तो कई एहसान–प्रत्याशी,
उम्मीदवार या धोखेबाज!
कई सोच रहे हैं कि शाही पोशाक
सही रूप से पतला होने के कारण
ठीक से दिखाई नहीं पड़ रहा है।
फिर भी यह वहाँ होना चाहिए,
कम से कम, होना कुछ नामुमकिन नहीं है।

यह कहानी सब को मालूम है।
लेकिन उस कहानी में केवल स्तुति–वाचक
कुछ सर से पैर तक डरपोक, अवसरवादी या मूर्ख
स्तोताओं ही मौजूद नहीं थे।
वहां एक बच्चा भी मौजूद था।
एक सत्यवादी, सरल, हिम्मतवाला बच्चा।

कहानी का राजा वास्तविकता की खुली सड़क पर आज उतार आये।
फिर उठ रही है तालियों की आवाज बार बार।
जम गया स्तोतायों की भीड़।
लेकिन मैं भीड़ में उस बच्चे को नहीं देख रहा हूँ।

वह बच्चा कहाँ चला गया?
क्या किसी ने उसे पहाड़ के एक गुप्त गुफा में छिपा रखा?
नहीं तो, हो सकता कि, वह पत्थर, घास, मिट्टी के साथ खेलते हुए
दूर कोई निर्जन एक नदी किनारे
या कोई एक मैदान के पेड़ की छाँव में, सो गया।

जाओ, जैसे भी हो उसे ढूंढ़ के यहाँ ले आओ,
उसे एकबार इस नंगा राजा के सामने बेधड़क खड़ा होने दो,
उसे तालिओं के शोर से ऊपर आवाज उठा कर पूछने दो,
राजा, तेरा कपड़ा कहाँ है?

(मूल बांग्ला से हिन्दी में अनुवादः रजत पुष्प भट्टाचार्य)

(यह कविता बांग्ला भाषा के 90 वर्षीय कवि श्री नीरेन्द्र नाथ चक्रवर्ती के कविता संग्रह 'उलंग राजा', जिसे 1974 ई. में साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया, से उद्धृत है। यह भारतीय समाज और विशेषतया भारतीय राजनीति में और कहें तो वैश्विक समाज और राजनीति में जो मिथ्याचरण, चाटुकारिता, धोखेबाजी, शोषणात्मकता, परजीविता, भय, स्वार्थपरता इत्यादि फैला हुआ है – कभी आजादी के नाम पर, कभी लोकतंत्र के नाम पर, कभी धर्म के नाम पर, कभी शांति के नाम पर – उन पर प्रकाश डालता है। आज के भारत के संदर्भ में, और विशेषतया 'राष्ट्रीय कायाकल्प' के मूल विचारों के संदर्भ में, जिन बातों ने प्रस्तुत कविता के प्रति ध्यान आकर्षित किया है वे हैं लोगों की आम धारणा कि भारत एक स्वतंत्र देश है और भारत में लोकतंत्र है। गला फाड़–फाड़ के हर मंच से हम इन धारणाओं को उद्घोषित करते हैं, ऐसे कि ये निर्विवाद और चिरंतन सत्य हैं। भारत के स्वतंत्र होने की धारणा की समीक्षा के लिए हमें भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास पर गौर करना चाहिए जिसमें इस संग्राम के महानायक महात्मा गाँधी ने स्पष्ट रूप से भारतीय स्वतंत्रता को परिभाषित किया था और कहा था कि भारत अंग्रेजों का नहीं बल्कि उनके द्वारा थोपी गयी एक शोषणात्मक और अनैतिकतापरक शासन व्यवस्था का गुलाम है और हमारी स्वतंत्रता का अर्थ अंग्रेजों से नहीं, उनकी इस शासन व्यवस्था से मुक्ति है। यह मुक्ति न हमें 15 अगस्त 1947 को मिली और न 26 जनवरी 1950 को। गणतंत्र भारत में मूलतः वही शासन व्यवस्था अपना कर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में लक्षित स्वतंत्रता भारत में अवतरित नहीं हो सकी। जहाँ तक भारत में लोकतंत्र होने का प्रश्न है, लोकतंत्र की सर्वमान्य परिभाषा ''जनता की, जनता के लिए और जनता के द्वारा सरकार'' से भारत का लोकतंत्र कोसों दूर है। कार्यरूप में जनता उसी तरह शोषित और निस्सहाय है, जैसा तथाकथित स्वतंत्रता और गणतंत्रता के पूर्व थी। फिर भी हम कहे जा रहे हैं कि भारत स्वतंत्र है और यहाँ लोकतंत्र है। कहाँ है वह बच्चा जो वास्तव में है, वही कहे। आज भारत खोज रहा है उस सत्यवादी, सरल, हिम्मतवाला' बच्चा को– **संपादक**)

सियासी मुखौटे का कड़वा सच

भ्रष्टाचार के साये में बेलगाम गरीबी की दारूण दशा

विजय नाथ झा

भारत की वर्त्तमान दशा और दिशा से आज संभवतः समाज का कोई वर्ग खुश नहीं है। सर्वत्र असंतोष और असुरक्षा का माहौल सभी को मानसिक रूप से उद्वेलित किये हुए है। विकास और सुशासन की डफली पीटने वाला सत्ता पक्ष परोक्षतः अपनी कुर्सी को बचाने और उसे मजबूत रखने की जुगत में परेशान है। वहीं प्रतिपक्षी दल जनता के आगे उनके दोषपूर्ण शासन की शल्य क्रिया में मशगूल नजर आता है। और आम जनता निरूपाय बनी इस विवशता को झेलने के लिए अभिशप्त है। विषमता के इस असार–पसार में एक तरफ गरीबों की गरीबी बढ़ रही है तो दूसरी ओर अभिजात्य और धनी वर्ग गलत–सही रास्तों को अखितयार करता हुआ अपनी सम्पत्ति को अकूत बनाने में पिला हुआ है। इस दुर्व्यवस्था का गरीबों पर हो रहा दुष्प्रभाव आज सभी क्षेत्रों में दिखायी दे रहा है। कहना गलत नहीं कि देश की लगभग तीन–चौथाई आबादी इस मार्मिक पीड़ा को दम साधकर लम्बे अरसे से सहने के लिए विवश है। वस्तुतः गरीबी का यह ऊर्ध्वमुखी ग्राफ शासन के तमाम दावों को झूठ का पुलिन्दा ही बनाये हुए हैं।

गरीबों की यह दुर्दशा आज की नहीं, अपितु आजादी के पहले से ही चली आ रही वह करुण गाथा है, जिसे सुनकर सभी संवेदना का मरहम तो जरूर लगाते हैं, पर इसका असर ढाक के तीन पात जैसा अर्थहीन साबित होता रहा है। वस्तुतः भारत में गरीबी की शुरूआत अंग्रेजों के औपनिवेशिक काल में ही हो गयी थी। 1858 ई. में अंग्रेजों ने यहाँ अपनी शासन–व्यवस्था को विधिवत कायम कर लिया था। व्यापार का इरादा लेकर आये अंग्रेजों ने यहाँ की मौजूदा स्थितियों का जायजा लेते हुए समझा कि भारत में लूट–पाट और शोषण की पर्याप्त संभावना है। यहाँ की अकूत धन–सम्पदा को उन्होंने व्यवस्थित ढंग से लूटने की योजना बनायी और आगे चलकर इसे मूर्तरूप देना शुरू किया। देश में गरीबी, बदहाली और उत्पीड़न का माहौल कायम होता गया और मुगल शासन–काल के बाद तक मोटा–मोटी जो भारत सम्पन्नता का मिसाल बना हुआ था वह आर्थिक मामलों में क्रमशः

नीचे गिरता गया। अंग्रेजों के समय भारत में 5–6 बार भीषण दुर्भिक्ष हुए। इस दौरान लाखों लोगों की जानें गयीं। इन दुर्भिक्षों की भयावहता ने विगत 5000 वर्षों की भारत की सम्पन्नता की परंपरा को धूल–धूसरित कर दिया। अंग्रेजों द्वारा लूट–पाट और शोषण के निर्बाध कृत्यों ने दबे–कुचले भारतीयों की चूलें हिला दीं। अंग्रेजों के दमन और शोषण की प्रवृत्ति से भारतीय जैसे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए। इस दुरूह पीड़ा को चुप रह कर पीना–पचाना जैसे देशवासियों की नियति बन गयी थी। निरंकुश अंग्रेज लूट–पाट के इरादे को बुलंद करते देश को खोखला बनाते रहे। यह विडंबना लंबे अरसे तक कायम रही।

गंभीरता से विचार करने पर यह बात सामने आती है कि वर्त्तमान भारत की शासन–व्यवस्था अंग्रेजों की औपनिवेशिक शासन–प्रणाली का ही रूपांतरित प्रतिरूप है। अतः आज भी भारतीय शासन–पद्धति परोक्षतः शोषण की प्रवृत्ति से निर्मूल नहीं कही जा सकती। हुक्मरानों और राजनेताओं के दोहरे चरित्र इसके परिचायक हैं। इस आलोक में भ्रष्टाचार के चहुँमुखी माहौल में यहाँ की गरीबी सर जमीन पर बद से बदतर होती रही है। सरकारी आंकड़े भले इस तथ्य को झूठा करार देते हों, लेकिन वास्तविकता हमेशा इन आंकड़ों से भिन्न रही। आज भी गरीबी देश की अहम समस्या है, जिसे निर्मूल करने के लिए वर्त्तमान शासन–प्रणाली का बदलना अनिवार्य है। इसके बिना बदले गरीबी का आमूल–चूल निर्मूलन असंभव है। विशेषतः जिम्मेदार शासकों को अपनी मनोवृत्ति और प्रवृत्ति, जो अब भी शोषण–मुक्त नहीं है, को बदले बिना गरीबी भगाने की माला जपने मात्र से कुछ भी होने वाला नहीं है। देश में गरीबी की जड़ें आज भी चारों ओर फैली नजर आती है। जिस गरीबी का हम यहाँ जिक्र करना चाह रहे हैं उसके कारणों की पड़ताल के लिए हमें अपने अतीत को झांकना आवश्यक प्रतीत होता है।

संक्षेपतः कहें तो सिंधु घाटी की सभ्यता, वैदिककाल और आगे चलकर मुगलकालीन भारत का आर्थिक–सामाजिक स्वरूप काफी उन्नत था। उस समय का यहाँ का जो आर्थिक आंकड़ा था वह यह संकेत देता है कि पूरे विश्व का चौथाई धन–सम्पदा अपने देश में भरा पड़ा था, जब कि शेष सम्पदा का विनिमय पूरे विश्व के हिस्से में था। आज की स्थिति है कि हाल में किया गया एक आर्थिक सर्वेक्षण इस बात को उजागर करता है कि विपन्नता के मामले में विभिन्न 184 देशों में भारत की स्थिति 55वें नम्बर पर है। दुनिया के 130 देश भारत से अधिक संपन्न हैं।

देशवासियों के लिए यह सौभाग्य रहा कि उन्हें इन विषम परिस्थितियों में माकूल मार्गदर्शन के लिए एक ऐसा युग–पुरुष मिला जिससे अंग्रेज भी प्रभावित थे और यहाँ के लोग भी। मेरा आशय युग–द्रष्टा महात्मा गाँधी से है। लेकिन दुःख की बात यह भी रही कि उनके निरापद जीवन–दर्शन को लोगों ने भली–भाँति आत्मसात् नहीं किया। गाँधी जी शुरू से ग्रामीण गणतंत्रता के पक्षधर रहे। वे विकास का अलख गाँवों से शुरू कर इसे जगाना चाहते थे। उन्हें उन सारी सुविधाओं से वे सम्पन्न करना चाहते थे जो उनकी मौलिक स्वायत्तता के एवज में सकारात्मक कारक सिद्ध होते पर ऐसा हो नहीं पाया। खास कर गाँवों की आर्थिक–सामाजिक दशा अभी तक संतोषप्रद नहीं हो सकी है। कहना गलत नहीं कि देश की तीन–चौथाई आबादी आज भी आर्थिक तंगी का सबब बनी हुई है। प्रतिकूल परिस्थितियों की उलटबांसी के दंश को झेलने से वे बच नहीं पा रहे हैं। बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि जब स्वराज आया तो गाँधी जी के विचारों या उनके आदर्शों पर पर्याप्त ध्यान देने के बदले हम पश्चिम की नकल की ओर मुड़ गये। हम गाँधी–दर्शन को एक तरह से नकारते हुए दुनिया की प्रचलित लीक पर चलने लगे। गाँधी जी के बाद पण्डित नेहरू का समय आया। गाँधी जी और नेहरू में आत्मिक संबंध अवश्य थे, पर गाँधीजी के ग्रामीण स्वराज–जन्य मनोभावों को नेहरू जी अक्षरशः आत्मसात नहीं कर पा रहे थे। नेहरू जी ने स्वराज और सर्वोदय के मार्ग को बहुत ऊँचा करार देते हुए स्वयं को उसके काबिल नहीं बताया। उन्होंने निःसंकोच कहा कि मैं अपनी ऊर्जा को समाजवाद के सार्वजनिक धरातल पर लाना और आगे बढ़ाना बेहतर समझता हूँ। शीर्ष राजनीतिज्ञों में विचारों का यह मतभेद आगे चलकर विकास और विनाश के बीच जो प्रतिफल हमारे बीच लाया उसमें असंतोष और उत्पीड़न के भाव ज्यादा मुखर देखने को मिले। गाँधी जी चाहते थे कि भारत का राजकीय आधार–भवन ग्राम–स्वराज की नींव पर खड़ा किया जाय। पर आजाद भारत का जब संविधान बनाया जाने लगा तब उसमें कहीं अमेरिका की नकल की गयी, कहीं इंग्लैंड की संवैधानिक मान्यताओं और परम्पराओं का अनुसरण किया गया। परिणाम यह हुआ कि स्वतंत्रता आंदोलन के दिनों में महात्मा

गाँधी और उनके अनुयायियों ने जिन राष्ट्रीय भावनाओं और आदर्शों की उपासना की थी, संविधान में उनका यथोचित निरूपण नहीं हो सका। संविधान की तथाकथित खामियों को लेकर आगे जो चर्चा हुई, वह भी निरर्थक साबित हुई। उन दिनों के चर्चित विचारक श्री सनातनम् और टी. प्रकाशम् ने साफ शब्दों में इसकी आलोचना की थी। इस पीड़ा से राजेन्द्र बाबू भी मर्माहत थे। उन्होंने तुरंत संविधान –सभा के विधि विशेषज्ञ डॉ राव को बुलवाया। डॉ. राव ने कहा कि अब ग्राम स्वराज के बुनियाद को लेकर इस संविधान को सुधारने बैठेंगे तो इसका सारा स्वरूप ही बदल जायेगा। चुनाव की पद्धति भी बदलनी पड़ेगी। इसमें काफी समय लग जायेगा। नेहरू और सरदार पटेल के सामने भी यह बात रखी गयी। उन्हें भी लगा कि यह अब संभव नहीं दिख रहा। इस प्रश्न को लेकर यों तो आगे भी बहस होती रही, लेकिन कोई खास परिणाम सामने नहीं आ पाया। लेकिन यह जरूर हुआ कि संविधान में एक धारा बढ़ायी गयी, जिसमें राज्यों को निर्देश दिया गया कि 'संविधान के मूल मार्गदर्शक सिद्धांतों को ध्यान में रखकर ग्राम–पंचायत को स्वायत्त शासन की इकाई माना जाय।' जो तथ्य गाँधी जी की राष्ट्रीय क्रांति के केन्द्र में थे, हमारे संविधान में उनकी राजनीतिक सोच को इतना ही स्थान मिल सका। वर्षों बाद यहाँ पंचायती राज के कार्यक्रम का श्रीगणेश हुआ। लेकिन इसकी मौलिक प्रेरणा में गाँधी जी की विचारधारा के अनुसरण की बात नहीं रही। परिणामस्वरूप सामुदायिक विकास योजना के लिए गाँवों के स्तर पर एक सरकारी ढ़ांचा खड़ा करने की दृष्टि मात्र सामने आयी। शायद यही कारण है कि आज भी गाँवों की पंचायतें स्थानीय स्वायत्त शासन की संस्था बनने के बदले राज्य सरकारों के हाथों में पड़ी कठपुतली संस्थाएं ही लगती हैं।

बहुतायत किसान आज भी तकनीकी जानकारी के अभाव में वैज्ञानिक खेती का लाभ नहीं ले पा रहे हैं। इस व्यापक क्षेत्र में किसानों की विवशता, गरीबी और उत्पीड़न को आज भी विषम बनाये हुए है। इतना ही नहीं, परिस्थितियों की मार से दबे किसान तबके से जब–तब इनके आत्मदाह की खबरें भी आती रहती हैं। निश्चित तौर से यह सब शासन–प्रणाली की लुंज–पुंज व्यवस्था को ही उजागर करता है।

कहना गलत नहीं कि मानक व्यवस्था को उद्देश्यपूर्ण बनाने, अवरोधक तत्वों को समाप्त करने एवं अवरोधी व्यक्तियों को दंड की प्रक्रिया में लाने से सुशासन का मार्ग प्रशस्त होता है और इसके अभाव में बदहाली पनपती है। ऐसे में दुराचार के बीज न केवल अंकुरित होते हैं बल्कि ये बेलगाम होते हुए फलते–फूलते भी हैं। विगत कई दशकों से यहाँ सभी क्षेत्रों में भ्रष्टाचार का बोलबाला द्रष्टव्य है। भारत में भ्रष्टाचार की सरजमीनी हकीकत पर शोध करते हुए 1966 ई. में विदेशी लेखक पॉल ब्रास ने अपनी किताब में लिखा कि भारत में सत्ताधारियों ने ही अपने स्वार्थवश ऊपर से नीचे की ओर भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया। इस मामले में वे बराबर निरंकुश बने रहे। स्व. राजीव गाँधी 1986 ई. में इस तथ्य को और स्पष्ट करते हुए अपने कार्यकाल में कहा था कि केन्द्र से निर्गत एक रूपये का 15वाँ भाग ही ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुँचता है, बाकी बीच–बिचौलियों में बँट जाता है।

गौरतलब है कि देश के कोई 70 प्रतिशत लोग किसान हैं। इनकी दशा सभी वर्गों से दयनीय रही हैं। सरकारी तंत्र के नाम पर दी जाने वाली सुविधा का ये किंचित लाभ नहीं ले पाते हैं। उनकी खेती को और लाभकारी बनाने के लिए राजकीय स्तर पर इन्हें जो सुविधाएं या जानकारी देने की व्यवस्था है – वह कागजी ज्यादा और सरजमीन पर कम ही देखने को मिलती है। फूड कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया उनके उपजाये अनाजों को खरीदने के लिए प्रतिबद्ध तो अवश्य है, लेकिन इसका अनुपालन तकनीकी खामियों का बहाना बनाकर व्यवहारतः नहीं के बराबर हो पाता है। नतीजतन लाचार किसान अपने अनाज बिचौलियों के हाथों कम कीमत पर बेचने को मजबूर देखे जाते हैं। खेती को और बेहतर बनाने के लिए खेतों की मिट्टी की परीक्षा, बुआई के पहले बीजों का माकूल शोधन और रासायनिक खादों के माकूल उपयोग–प्रयोग की भी सही जानकारी देने वाला सरकारी कर्मी या अधिकारी गाँवों तक जाकर इन्हें उचित सुझाव नहीं देता। बहुतायत किसान आज भी तकनीकी जानकारी के अभाव में वैज्ञानिक खेती का लाभ नहीं ले पा रहे हैं। इस व्यापक क्षेत्र में किसानों की विवशता, गरीबी और उत्पीड़न आज भी विषम बने हुए है। इतना ही नहीं, परिस्थितियों की मार से दबे किसान तबके से जब–तब इनके आत्मदाह की खबरें भी आती रहती हैं। निश्चित तौर से यह सब शासन–प्रणाली की लुंज–

भारत आज निरंकुश भ्रष्टाचार के दौर से गुजर रहा है। अलग–अलग रूपों में इसकी अलग ही राम–कहानी है। ट्रान्सपेरेंसी इन्टरनेशनल के 2012 ई. की रिपोर्ट के अनुसार भ्रष्टाचार के मामले में तमाम 176 देशों की सूची में भारत 94वें स्थान पर है। देश में जैसे घोटालों के नेटवर्क ने अपना पैर जमा रखा है। ग्लोबल फाइनेंसियल इंटेग्रिटी के प्रमुख रेमंड बेकर के अनुसार केवल चार वर्षों के बीच (वर्ष 2002 से 2006 के दौरान) भारत में प्रतिवर्ष 273 बिलियन डॉलर के हिसाब से कुल लगभग 1100 बिलियन डॉलर कालाधन विदेशी बैंकों में पहुँचा। जबकि देश में पल रहे काले धन का कोई ब्योरा ही नहीं है।

पुंज व्यवस्था को ही उजागर करता है। व्यवस्थाजन्य उपेक्षा और उदासीनता के शिकार अधिकांश किसान सर्वाधिक शोषित और पीड़ित हैं।

भारत आज निरंकुश भ्रष्टाचार के दौर से गुजर रहा है। अलग–अलग रूपों में इसकी अलग ही राम–कहानी है। ट्रान्सपेरेंसी इन्टरनेशनल के 2012 ई. की रिपोर्ट के अनुसार भ्रष्टाचार के मामले में तमाम 176 देशों की सूची में भारत 94वें स्थान पर है। देश में जैसे घोटालों के नेटवर्क ने अपना पैर जमा रखा है। टू–जी स्पेक्ट्रम घोटाला, कॉमनवेल्थ घोटाला, बोफोर्स घोटाला, चारा घोटाला, मधु कोड़ा प्रकरण घोटाला आदि देश के दागदार कथानक हैं। ग्लोबल फाइनेंसियल इंटेग्रिटी के प्रमुख रेमंड बेकर के अनुसार केवल चार वर्षों के बीच (वर्ष 2002 से 2006 के दौरान) भारत से प्रतिवर्ष 273 बिलियन डॉलर के हिसाब से कुल लगभग 1100 बिलियन डॉलर कालाधन विदेशी बैंकों में पहुँचा। जबकि देश में पल रहे काले धन का कोई ब्योरा ही नहीं है।

न्यायतंत्र में भ्रष्टाचार के खिलाफ उठती आवाज, मीडिया की बिकाऊ प्रवृत्ति, राजनेताओं का नैतिक चारित्रिक स्खलन और भ्रष्टाचार में आकंठ डूबे रहना देश की वर्त्तमान दशा और दिशा को जिस रसातल में पहुँचा रहा है – उससे हम सभी वाकिफ हैं। राजनीति में जाति, धर्म, सम्प्रदाय और परिवारवाद का बढ़ता वर्चस्व नेताओं के वर्त्तमान स्वरूप का वह आईना है, जिनका परिचय विवादों से घिरा है।

आम लोगों में आज की बढ़ती आर्थिक पीड़ा निश्चित रूप से चिन्ताजनक है। निर्धन और धनी लोगों के बीच खाई बढ़ती जा रही है। सरकारों की वैचारिक एकांगिता निश्चित रूप से इस स्थिति के लिए उत्तरदायी है। इन हालातों ने देश को ऐसे मोड़ पर ला दिया है जहाँ से मोटे तौर पर दो ही रास्ते निकलते हैं। एक क्रांति का मार्ग तो दूसरा पतन का मार्ग। ऐसी भयावह स्थिति से उबरने के लिए हमें पुनःपुनः गाँधी–दर्शन पर गंभीरता से विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। ऐसे में हमें अपनी सार्वभौमिक दशा को सुधारने हेतु उनके बताये मार्गों को अपनाना होगा, तभी हम सही अर्थों में 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' का सपना साकार कर पायेंगे।

(लेखक एक पत्रकार एवं साहित्यकार हैं तथा पूर्ववर्ती प्रतिष्ठित दैनिक आर्यावर्त्त के संपादक मंडल में थे)

पाठकों से

''राष्ट्रीय कायाकल्प'' में प्रतिपादित विश्लेषणों, विचारों और कार्यक्रमों के संबंध में आपके विचारों, सुझावों और प्रतिक्रियाओं का हम स्वागत करेंगे। इसके लिए आप हमसे निम्नलिखित रूप में संपर्क स्थापित कर सकते हैं :

1. संपादक के नाम पत्र से : पता – डा. टी. प्रसाद, 173 बी, श्रीकृष्णपुरी, पटना– 800001
2. ईमेल से : पता– rashtriyakayakalp@gmail.com
3. टेलीफोनः 0612–2541276 (कार्यालय) , 0612–2541885 (आवास)
4. मोबाइल : 09431815755
5. वेबसाइट : www.fcsgi.org इस वेबसाइट पर आप भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन विचार मंच, जिसका मुखपत्र राष्ट्रीय कायाकल्प है , के बारे में पूरी जानकारी हासिल कर सकते हैं।

(नोट : डाक अथवा ईमेल से प्राप्त आपके पत्रों को पूर्ण/संक्षिप्त/संशोधित रूप में हम अपनी सुविधा के अनुसार राष्ट्रीय कायाकल्प के आने वाले अंक में यथा आवश्यक अपनी टिप्पणी के साथ प्रकाशित करेंगे।)

महात्मा गाँधी की वसीयत : उनका अंतिम पत्र

(भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष को सम्बोधित महात्मा गाँधी ने अपने जीवन की आखिरी रात, 29 जनवरी 1948 को यह पत्र लिखा था और यह सुनिश्चित किया था कि अगले दिन, जो उनके जीवन का अंतिम दिन था, यह पत्र प्रेषिती को यथासमय मिल जाय। सम्भवतः उन्हें भान हो कि उनके इस महत्त्वपूर्ण संदेश को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को, जिसने देश के स्वतंत्रता संग्राम में अग्रणी भूमिका निभाई थी, और प्रकारांतर से देशवासियों को पहुँचाने का अंतिम अवसर था। जैसा कि इस पत्र में उल्लेखित है, 15 अगस्त 1947 को भारत को जो स्वतंत्रता मिली वह महज राजनीतिक स्वतंत्रता थी, पूर्ण स्वतंत्रता यानि राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ सामाजिक, नैतिक और आर्थिक स्वतंत्रता हासिल करने के लिए संग्राम अभी शेष है। इस शेष संग्राम का स्वरूप पूर्ववर्ती संग्राम से भिन्न होगा और इसके लिए राजनीति और राजनीतिक दल का स्वरूप भी तदनुसार भिन्न होगा। भारतीय स्वतंत्रता के महानायक और युग पुरूष महात्मा गाँधी ने इस पत्र में इसी स्वरूप को देश के सामने रेखांकित किया है। इस पत्र में स्वतंत्र भारत में अग्रणी राजनीतिक दल की जो संरचना रेखांकित की गयी है उसकी विशेषता यह है कि यह गाँवों से प्रारम्भ हो कर राष्ट्रीय स्तर पर समाप्त होती है। आम तौर से देश की कोई राजनीति संरचना ऊपर से नीचे चलती हुई परिभाषित होती है – राष्ट्रीय स्तर से प्रारंभ होकर गाँव स्तर तक। राजनीतिक दल की नई संरचना जिसका संदेश महात्मा गाँधी ने देश को इस पत्र के माध्यम से दिया है, वह देश की राजनीति और इसके स्वरूप को बदल देगी। इसमें निहित है दल विहीन सरकार का मंत्र।

इस पत्र में स्वतंत्र भारत में कैसी सरकार हो, उसकी संरचना कैसी हो, इसका कोई प्रत्यक्ष संदेश नहीं है। लेकिन यह संदेश तो महात्मा गाँधी द्वारा अनुप्रेरित और निर्देशित हमारे स्वतंत्रता संग्राम में निहित है जिसका उल्लेख उन्होंने 1908 में लिखित अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' से लेकर अनेक पत्रों, लेखनों और बयानों में की है। उन्होंने इस बात पर बार–बार बल दिया है कि हमारे स्वतंत्रता संग्राम का उद्देश्य अंग्रेजों को भारत से भगाना या उनके न्यायोचित हितों पर प्रहार करना नहीं है, बल्कि उनके द्वारा भारत पर थोपी गई शासन व्यवस्था को हटाना है जिसके कारण भारत की दुर्दशा, दारिद्रीकरण और नैतिक पतन होते रहा है। स्वतंत्र भारत की कैसी सरकार हो, इसकी अवधारणा तो ''हिंद स्वराज'' में 'ग्राम गणतंत्र' के रूप में उल्लिखित है। स्वतंत्र भारत में राज्य सत्ता ऊपर से चलकर नीचे नहीं आयेगी, बल्कि व्यक्ति से निःसृत होकर राष्ट्रीय स्तर तक प्रवाहित होगी। भारत में ऐसी शासन व्यवस्था और सरकार स्थापित हुए बिना हमारा स्वतंत्रता संग्राम अपना लक्ष्य नहीं प्राप्त करेगा और अधूरा रह जायेगा। गाँधी जी का यह पत्र उसी लक्ष्य को प्राप्त करने का मार्ग दर्शन है, अधूरे स्वतंत्रता संग्राम को पूरा करने का आह्वान है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के महानायक गाँधी को सम्भवतः पूर्वाभास था कि इस संग्राम को राजनीतिक स्वतंत्रता के पड़ाव से आगे पूर्ण स्वतंत्रता के लक्ष्य तक ले जाने के लिए वह भौतिक रूप से उपलब्ध नहीं रहेंगे और संभवतः यह भी कि अभी तक स्वतंत्रता संग्राम का रास्ता चाहे कितना भी कठिन क्यों न रहा हो और यह पड़ाव चाहे कितना भी महत्त्वपूर्ण और लुभावनकारी क्यों न हो, भारत की दुर्गति की कहानी में तब तक पूर्ण विराम नहीं लगेगा जब तक भारत पूर्ण स्वतंत्रता का अपना लक्ष्य न प्राप्त कर ले। यद्यपि यह पत्र अखिल भारतीय कांग्रेस अध्यक्ष को सम्बोधित था और प्रत्यक्षतः उस दल के पुनर्गठन के सम्बंध में था, वास्तव में यह पत्र देशवासियों को उनका विदाई सम्बोधन था। हम देशवासियों को इस पत्र को इसी संदर्भ में लेना, समझना और अमल करना चाहिए – **संपादक**)

दो राष्ट्रों में विभाजित होने के साथ जब भारत ने भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस द्वारा बताए रास्ते से राजनीतिक स्वतंत्रता हासिल कर ली तो वर्त्तमान स्वरूप में, यानी प्रचार माध्यम और संसदीय संगठन के रूप में, इसकी (कांग्रेस की) उपयोगिता समाप्त हो गयी। भारत को अभी अपने सात लाख गाँवों के संदर्भ में, अपने कस्बों और शहरों से भिन्न, सामाजिक, नैतिक और आर्थिक स्वतंत्रता हासिल करनी है। अपने लोकतांत्रिक लक्ष्य की ओर बढ़ने में, सैन्य शक्ति पर असैन्य शक्ति का वर्चस्व स्थापित करने में, निश्चित तौर पर भारत को संघर्ष करना पड़ेगा। इस संघर्ष को राजनीतिक दलों और साम्प्रदायिक शक्तियों के साथ विकृत प्रतिस्पर्द्धा से मुक्त रखना पड़ेगा। इन कारणों और इसी तरह के अन्य कारणों से वर्त्तमान कांग्रेस संगठन को विघटित कर एक ''लोक सेवक संघ'' के रूप में निम्नलिखित नियमों, जिन्हें भविष्य में आवश्यकतानुसार बदलने की शक्ति रहेगी, के अधीन प्रस्फुटित होने का अखिल भारतीय कांग्रेस समिति संकल्प लेती है;

पाँच ऐसे वयस्क व्यक्तियों, जो या तो ग्रामीण हों या ग्राम्य विचारों के हों, की पंचायत एक इकाई होगी। दो अगल–बगल के पंचायतों को मिलाकर एक कार्यकारी दल बनेगा जिसका नेता उन्हीं दस में से चुना जायेगा। एक सौ ऐसे पंचायतों से, पचास प्रथम श्रेणी के नेता अपने में एक को द्वितीय श्रेणी के नेता चुनेंगे। और इस तरह यह प्रक्रिया चलती जायेगी। इस प्रक्रिया में प्रथम श्रेणी के नेता द्वितीय श्रेणी के अपने नेता के नेतृत्व में काम करेंगे। इस तरह दौ सौ पंचायतों के समानांतर समूह तब तक बनते जाएंगे जब तक पूरा भारत इस प्रक्रिया के तहत न आ जाय। जिस तरह से पंचायतों का पहला समूह द्वितीय श्रेणी का नेता चुनेगा, उसी तरह पंचायतों का अगला समूह भी द्वितीय श्रेणी का नेता चुनेगा। दूसरी श्रेणी के सभी नेता पूरे भारत वर्ष के लिए संयुक्त रूप से काम करेंगे और अपने–अपने क्षेत्रों की पृथक रूप से भी सेवा करेंगे। दूसरी श्रेणी के सभी नेता यदि आवश्यक समझें अपने में से एक को प्रधान चुनेंगे जो जब तक उनका विश्वास कायम रखेंगे सभी समूहों का नियमन और नियंत्रण करेंगे।

(चूँकि प्रांतों और जिलों का गठन अभी भी अधर में है, सेवकों के इन समूहों को प्रांतीय या जिला परिषद के स्तर पर बाँटने का प्रयास नहीं किया गया है और किसी भी समय जो समूह या समूहों का गठन होगा उसका क्षेत्राधिकार पूरा भारत होगा। यह ध्यान देने की बात है कि सेवकों के इस समूह को जो भी शक्ति या अधिकार मिलेंगे वे उनके द्वारा अपने स्वामी यानी भारत को खुशी और समझदारी पूर्वक सेवा के चलते ही मिलेंगे।)

1. हर सेवक अपने द्वारा काते हुए धागे से या अखिल भारत कताईकार संघ द्वारा प्रमाणित खादी वस्त्र ही सदा पहनेगा और वह अवश्यमेव मद्यत्यागी होगा। अगर वह हिंदू होगा, तो वह व्यक्तिगत या पारिवारिक तौर पर किसी भी रूप या प्रकार की अस्पृश्यता को शपथपूर्वक त्याग देगा और उसे अन्तर्साम्प्रदायिक एकता, सभी धर्मों के प्रति बराबर का मान–सम्मान और बिना प्रजाति, पंथ और लिंग का विचार किए सभी को समान अवसर के आदर्श में पूर्ण आस्था होगी।
2. वह अपने अधिकार क्षेत्र के हर ग्रामीण से व्यक्तिगत तौर पर सम्पर्क रखेगा।
3. वह ग्रामवासियों के बीच से श्रमिकों को भर्ती कर उन्हें प्रशिक्षण देगा और इसके लिए एक पंजिका रखेगा।
4. वह अपने दिन–प्रतिदिन के कार्यों का लेखा–जोखा रखेगा।
5. वह गाँवों को इस तरह से संघटित करेगा कि वे कृषि और हस्तशिल्प के माध्यम से अपने में परिपूर्ण और आत्मनिर्भर बन सकें।
6. वह ग्रामवासियों को स्वास्थ्य और सफाई में शिक्षित करेगा और वह उनके कुस्वास्थ्य और बीमारी की रोकथाम के लिए हर कार्रवाई करेगा।
7. वह हिन्दुस्तानी तालिमी संघ द्वारा निर्धारित नीति के अर्न्तगत जन्म से लेकर मृत्यु तक नई तालीम के अनुरूप ग्रामवासियों की शिक्षा का आयोजन करेगा।
8. वह यह सुनिश्चित करेगा कि जिनका नाम सांविधिक मतदाता सूची में नहीं है उनका नाम इसमें विधिवत शामिल हो जाय।
9. वह उन लोगों को जिन्होंने मताधिकार प्राप्त करने के लिए आवश्यक योग्यता अभी तक नहीं प्राप्त की है, उसे प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करेगा।
10. उपर्युक्त और अन्य उद्देश्यों, जिन्हें समय–समय पर जोड़ा जायेगा, की प्राप्ति के लिए लोकसेवक संघ द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार अपना समुचित कर्त्तव्य वहन कर सके इसके लिए वह अपने को प्रशिक्षित और योग्य बनाएगा।

लोक सेवक संघ निम्नलिखित स्वायत्त संगठनों को सम्बद्ध करेगा –

1. अखिल भारतीय कताईकार संघ
2. अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ
3. हिन्दुस्तानी तालिमी संघ
4. हरिजन सेवक संघ
5. गोसेवा संघ

वित्त व्यवस्था

अपने मिशन की पूर्त्ति के लिए लोक सेवक संघ ग्रामवासियों और अन्य व्यक्तियों से वित्तीय उगाही करेगा और इस बात का ख्याल रखेगा कि गरीब से गरीब व्यक्ति का भी इसमें अंशदान हो।

('हरिजन' के 15 फरवरी 1948 के अंक में प्रकाशित। उपलब्ध अंग्रेजी मूल का सम्पादक द्वारा किया गया अनुवाद)

प्रश्नोत्तर के माध्यम से

शासन व्यवस्था परिवर्तन के इस

अभियान को समझना

(गतांक से आगे...)

प्र. 14 शासन व्यवस्था परिवर्त्तन हेतु उपर्युक्त कार्रवाई के सम्पादन के लिए इस अभियान का क्या कार्यक्रम है?

उत्तर शासन व्यवस्था परिवर्त्तन अभियान दो स्पष्ट किन्तु अन्तर्प्रभावी चरणों में सम्पादित किया जाना है। 'जागृति, शिक्षा और प्रेरणा' के पहले चरण में लोगों को वांछित परिवर्त्तन के लिए जागृत करना , शिक्षित करना और इस हेतु उन्हें क्या करना है, उसके लिए प्रेरित करना है। ''भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्त्तन विचार मंच'' के तत्वाधान में यह चरण सम्पादित करना है। इसके लिए सूचना और संचार के विभिन्न साधनों, यथा मुद्रित, इंटरनेट, दूरसंचार, श्रव्य–दृश्य माध्यमों और जनसभा एवं सम्मेलनों का सहारा लिया जायेगा। ''राजनीतिक कार्रवाई'' के इसके दूसरे चरण में एक राष्ट्रीय राजनीतिक दल जिसे आरंभिक रूप से ''लोक सेवा विकास दल'' (लोसेविद) कहा जा सकता है गठित किया जायेगा जिसका प्रमुख राजनीतिक एजेंडा होगा देश की शासन व्यवस्था में वांछित परिवर्त्तन लाने के लिए संवधिान में समुचित संशोधन लाना। इस के लिए इसे सभी आवश्यक सांगठनिक, राजनीतिक और चुनावी कार्रवाई करनी होगी तथा इसी के लिए यह दल विशेष रूप से प्रायोजित होगा।

''भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्त्तन विचार मंच'' तथा ''लोक सेवा विकास दल'' के तत्त्वाधान में इस अभियान के दोनों चरणों में होने वाले विभिन्न कार्यों के लिए एक राष्ट्रव्यापी सांगठनिक संरचना बनानी होगी जिसमें प्रधान कार्यालय से लेकर राज्य, जिला या लोकसभा निर्वाचन क्षेत्र, अंचल तथा गाँवों के स्तर पर कार्यालय होंगे। इन कार्यालयों में समुचित रूप से प्रशिक्षित और समर्पित स्थानीय कार्यकर्त्ता और अधिकारी होंगे।

प्र. 15 इस अभियान की सफलता के लिए क्या आवश्यक है?

उ. किसी भी अभियान की सफलता के लिए मूलभूत आवश्यकता है कि जिस मौलिक धारणा और विचार पर वह अभियान आधारित है वह कितना तर्कसंगत तथा परिपक्व है। चूँकि इस अभियान का आधार युगद्रष्टा महात्मा गाँधी की अवधारणा और विचार एवं दुनिया के जीवंत अनुभव हैं, यह इस मूलभूत आवश्यकता को पूरा करता है। आधुनिक संदर्भ में इन अवधारणाओं और विचारों का सुदृढ़ीकरण तो एक सतत प्रक्रिया रहेगी। इसके बाद, दो और आवश्यकताएं हैं,

(1) एक कार्य कुशल और अनुशासित संगठन, तथा

(2) मानव तथा आर्थिक संसाधन। इन दोनों आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए समर्पित प्रयास करना होगा।

प्र. 16 कौन इस अभियान की सफलता में योगदान दे सकता है और किस रूप में?

उ. कोई भी जो इस अभियान की मौलिक अवधारणाओं और विचारों से सहमत है वह इसकी सफलता में निम्नलिखित रूप से योगदान दे सकता है।

(1) वह अभियान से सम्बद्ध संगठन (''भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन विचार मंच'' या/और ''लोक सेवा

आमतौर पर व्यवस्था परिवर्तन को एक जटिल प्रक्रिया मान लिया जाता है, लेकिन वास्तव में ऐसा है नहीं। अगर जन–जन ठान ले, तो यह सपना निश्चित रूप से साकार हो सकता है।

तो आइये, राष्ट्रीय कायाकल्प का ग्राहक बनकर, अपने सगे–संबंधियों, परिचितों को ग्राहक बनाकर इस राष्ट्रव्यापी पहल में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करें।

राष्ट्रीय कायाकल्प

173 बी, श्रीकृष्णपुरी, पटना 800001, फोनः 0612 2541276

विकास दल'') की सदस्यता ग्रहण करके इसकी गतिविधियों में भाग लेकर इन अवधारणाओं और विचारों को विभिन्न तरीकों से प्रचार कर सकता है।

(2) वह इस अभियान के सचांलन हेतु आर्थिक सहायता दे सकता है।

(3) हर व्यस्क भारतीय नागरिक ''लोक सेवा विकास दल,'' जो भारतीय शासन व्यवस्था में वाछिंत परिवर्त्तन लाने के लिए प्रतिबद्ध और समर्पित होगा, के उम्मीदवारों के पक्ष में चुनाव में मतदान देकर इस दल को आवश्यक बहुमत दिला सकता है और इस तरह इस अभियान को सफल बना सकता है।

प्र. 17 क्या पंचायती राज कानून का कार्यान्वयन इस अभियान, जो मूलतः सत्ता का विकेन्द्रीकरण करना चाहता है, के उद्देश्यों को नहीं पूरा करता ?

उ. स्वतंत्र भारत में ''ग्राम गणतंत्र'' की गाँधी जी की अवधारणा या अमेरिका जैसे लोकतांत्रिक देश में कार्यरत ''गाँव की सरकार'' भारत में 1992 में संवैधानिक संशोधन के द्वारा पारित पंचायती राज कानून के अन्तर्गत लायी गयी व्यवस्था से मूलतः और महत्त्वपूर्ण ढंग से भिन्न है। संविधान निर्माण के समय गाँधी जी के सम्मानार्थ उनके विचारों कों ''राजकीय नीति के निर्देशक सिद्धान्त'', जिसके कार्यान्वयन की कोई संवैधानिक वाध्यता नहीं है, के अन्तर्गत डाल दिया गया था। भारत के स्वतंत्र होने और गणतंत्र बनने के चालीस वर्षों से भी अधिक अवधि के बाद पंचायती राज व्यवस्था को प्रभावी बनाने के लिये संविधान का यह संशोधन लाया गया। हमें इस पंचायती राज के सच्चे स्वरूप और विशिष्ट गुणों को समझने के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना होगा।

(i) जिस तरह से राज्य सरकार या केन्द्रीय सरकार है, उस तरह से 'पंचायती राज' अपने स्तर की सरकार नहीं है। वास्तव में 'सरकार' की जो सर्वमान्य परिभाषा है, उसके अनुसार 'पंचायती राज' कोई सरकार नहीं है। वह तो राज्य सरकार का ही एक विस्तारित अंग है जो जनता द्वारा निर्वाचित होता है और जिसे राज्य सरकार द्वारा कुछ निर्धारित प्रशासनिक कार्यों को सम्पन्न कराने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। (ii) उपर्युक्त कार्यों को सम्पन्न करने के लिए पारम्परिक रूप से राज्य सरकार का अपना भी प्रशासनिक तंत्र है। चूँकि पंचायती राज संस्थाओं का अपना कोई प्रशासनिक तंत्र नहीं है, सिद्धान्ततः उन कार्यों को सम्पन्न करने के लिए उन्हें राज्य सरकार के ही प्रशासनिक तंत्र का उपयोग करना है। इससे दो बातें होती हैं, (i) एक तो प्रशासनिक नियंत्रण के दुहरेपन तथा प्रशासनिक अधिकर क्षेत्र में विरोधाभास होने से कार्यों का कुशल सम्पादन नहीं हो पाता, और दूसरे (ii) सरकारी मानसिकता और नैतिकता स्थानीय स्तर पर भी आ जाती है और फलतः पंचायती राज संस्थाओं के कार्यकलाप भी भष्टाचार के संस्कार से आक्रांत हो जाते हैं। 'पंचायती राज' के उपर्युक्त स्वाभाविक दुर्गणों का किसी भी प्रशासनिक उपायों से निराकरण नहीं किया जा सकता। परिवर्त्तित शासन व्यवस्था का वैचारिक आधार है कि राजसत्ता व्यक्ति में निहित है और वहीं से निकलकर विभिन्न स्तरों की सरकारों को सत्तावान बनाती है, इसलिए ग्राम सरकार, जो शासन का प्रथम स्तर होगा, अपने अधिकर क्षेत्र में आने वाले सभी कार्यों का सम्पादन करने के लिए पूर्णतः सक्षम और सशक्त होगी, जिससे एक उत्तरदायी, संवेदनशील, सहभागितापूर्ण तथा नैतिक शासन का उदय होगा। (जारी)...

भारत के हर नागरिक से अपील

- भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन के अभियान को आप समझें
- इसके लिए आप राष्ट्रीय कायाकल्प, भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन मंच के वेबसाइट और ब्लॉग का इस्तेमाल कर सकते हैं।
- संस्था का सदस्य बनकर इसके विभिन्न कार्यों में सहयोग करें।
- आर्थिक सहयोग कर राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम को आगे बढ़ाने में सहयोग करें।

भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन मंच

173 बी, श्रीकृष्णपुरी, पटना 800001

टेलीफोनः 0612–2541276, ईमेल rashtriyakayakalp@gmail.com

स्वामी विवेकानन्द

की

प्रेरणादायी उक्तियां

1. उठो, जागो और तब तक रूको नहीं, जबतक मंजिल न प्राप्त हो जाये।
2. जो सत्य है, उसे साहसपूर्वक निर्भीक होकर लोगों से कहो- उससे किसी को कष्ट होता है या नहीं , इस ओर ध्यान मत दो। दुर्बलता को कभी प्रश्रय मत दो। सत्य की ज्योति तथाकथित बुद्धिमान लोगों के लिए यदि अत्यधिक मात्रा में प्रखर प्रतीत होती है, और उन्हें बहा ले जाती है, तो ले जाने दो- वे जितना शीघ्र बह जाएं, उतना अच्छा है।
3. तुम अपनी अंतस्थ आत्मा को छोड़ किसी और के सामने सिर मत झुकाओ। जब तक तुम यह अनुभव नहीं करते कि तुम स्वयं देवों के देव हो, तब तक तुम मुक्त नहीं हो सकते।
4. ब्रह्मांड की सभी शक्तियां हमलोगों में स्वतः विद्यमान है। ये तो हमलोग हैं कि जो अपने हाथों को आंखों पर रखकर चिल्लाते हैं कि चारों ओर अंधेरा है।
5. अस्तित्व का सारा रहस्य है निर्भय होना। कभी डरो नहीं कि तुम्हारा क्या होगा और किसी पर आश्रित नहीं रहो। जैसे ही तुम हर सहायता अस्वीकार करते हो कि तुम मुक्त हो गए।

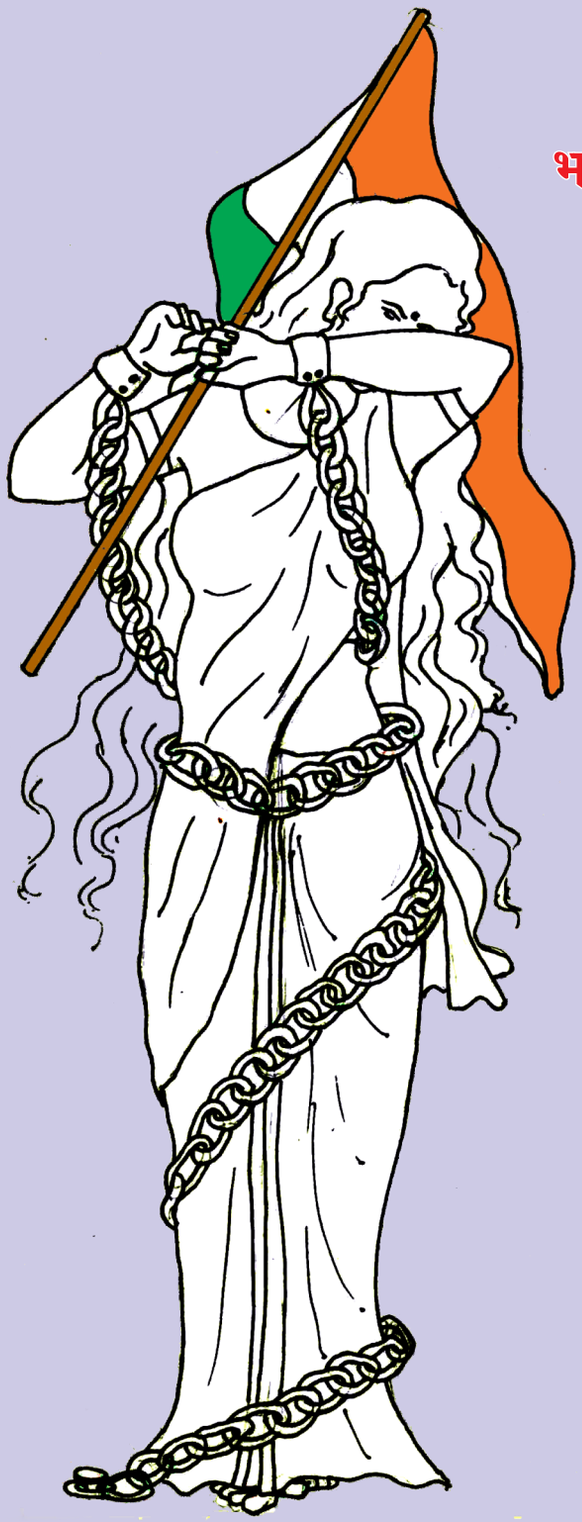

भारत माँ अभी भी जंजीरों में

''सदियों से गुलामी की जंजीर में जकड़ी भारत माँ 1947 में इन जंजीरों से मुक्त नहीं हुई। ब्रिटिश संसद से पारित भारतीय स्वतंत्रता का कानून 1947 के तहत सत्ता हस्तांतरण कर अंग्रेजों ने सिर्फ इस जंजीर में लगे हुए ताले की चाभी भारतीयों के हाथों में सौंप दी। इस चाभी से ताला खोलकर भारत माँ को इन जंजीरों से मुक्त करने के बजाय 1950 के 26 जनवरी को इस ताले को बदल कर नया ताला लगा कर मुक्ति का सिर्फ अहसास कर लिया गया। वह जंजीर बदस्तूर कायम रही। बल्कि समय के साथ इन जंजीरों में जंग लगने से जकड़ के साथ और विकृतियाँ उत्पन्न हो रही है। हमें भारत माँ को वास्तव में इन जंजीरों से मुक्त कराना है, जिससे भारत माँ के शरीर में रक्त का संचार ठीक से हो सके, विभिन्न रोगों से छुटकारा मिले और अंग प्रत्यंग पुष्ट हो। भारत में आधी-अधूरी और फलतः विकृत स्वतंत्रता के स्थान पर पूर्ण और स्वस्थ स्वतंत्रता का आविर्भाव करना है। जन-गण की संप्रभुता को संविधान के पन्नों से निःसृत होकर जन जीवन में लाना है। और इस सब के लिए शासन व्यवस्था में तदनुरूप परिवर्त्तन लाना अनिवार्य है।''

वातायन
0612-2222920